(पूज्य श्री नागा निरंकारी जी महाराज)

प्रस्तुति : डा० अर्चना गुप्ता (रानी)

आर०के० गुप्ता

77- बी, कैन्ट, पनचक्की, कानपुर-208004

मो० 9415131401

पुस्तक मिलने का पता

डॉ० जे. एल. सूरी, बर्लिंग्टन चौराहा,

विधान सभा मार्ग, लखनऊ

फोन : 0522-2622956 मो० 9415062640

।। ॐ श्री परमात्मने नमः ।।

"प्रसाद"

लेखक

साधुवेश में एक पथिक

गीत

मुझे प्रेम करो या ठुकराओ, प्रभु आपकी मर्जी पर निर्भर।
हम तो चरणों में आन पड़े, अब छोड़ दिया सब कुछ तुम पर।।
संसार से नाता तोड़ लिया, अब तुमसे नाता जोड़ लिया।
मैं प्रभु हूँ, प्रभु मुझ में है, भीतर प्रभुवर बाहर प्रभुवर।।
मुझे हर सांस में मीठी यादें हैं, हर याद में प्यारी सूरत है।
सूरत में जो है मुसकान मधुर, यह मन है उस पर न्योछावर।।
मुझे सब कर्म तुम्हीं में अर्पण है, सब धर्म तुम्हीं में अर्पण है।
सर्वस्व तुम्हारा हो तो है, स्वीकार करो हे करूणावर।
मुझे प्यार करो या ठुकराओ, प्रभु आपकी मर्जी पर निर्भर।।

*****

गीत

यह कृपा ही तो है जब सन्त मिला देते तुम।
मोह की नींद में सोते से जगा देते तुम।।
अपनी बद किस्मती पर जहाँ हम दुखी होते।
दुखी होकर के याद करते हैं तुम्हें जब हम।
दया करके मेरी बिगड़ी को बना देते तुम।
नजर के साथ में कुछ ऐसे रोशनी देकर।
देख सकते न थे जो वह भी दिखा देते तुम।।
जहाँ पर ख्वाहिशें सब अपनी पूरी हो सकती।
वहीं अधिकारी बना हमको बिठा देते तुम।।
किसी खतरे से जब हमको बचाना होता।
हम नहीं चाहते थे फिर भी उठा देते तुम।।
तुम्हारी खोज में हम खोजने वाले खोये।
निराश होते ही निज भेद बता देते तुम।।
जिनके जरिये तुम्हें हम अपने में ही जान सके।
पथिक कुछ अनोखे से ये गीत गा देते तुम।।

*****

गीत

हे प्रभु तेरा दर्शन पाकर के आंखों में शरूर आ जाता है।
चरणों में जब मैं पहुँचता हूँ, अपने पे गरूर आ जाता है।।
रहनुँमा तुम्हीं हो दुनिया के, भक्तों के दिलों में उजाला हो।
मिलते ही तुमसे ऐ मालिक, हर चीज पे नूर आ जाता है।।
बिगड़ी तकदीर सम्भलती है, तेरे सन्मुख आ जाने से प्रभु।
खुश किस्मत हैं जो तेरे निकट, होकर के भी दूर आ जाता है।।
जी भर के तुम्हें मैं देख सकूँ यह पूरी तमन्ना नहीं होती।
बेताव निगाहों के आगे, पर्दा सा जरूर आ जाता है।।
दुख दर्द के मारे आते हैं, राहत के लिये तेरे दर पर।
रहमत का जलवा उमड़ करके, दिल में भरपूर आ जाता है।।
मिलती है भीख मुहब्बत की, सबको तुमसे ही ए दाता।
जीवन है सफल उसका जिसको जीने का सहूर आ जाता है।।

*****

गीत

यह प्रेम पथ ऐसा ही है जिसमें सब कोई चल न सके।
कितने ही बढ़े थके फिसले, कुछ आगे गए सम्भल न सके।।
जो कुछ न चाहते हैं जग में, वह कहीं न रुकते हैं मग में।
है सुन्दर सांची प्रीति वही, जो उर से कभी निकल न सके।।
वे प्रेमी ही अधिकारी हैं, जो इतने धीरज धारी हैं।
चाहे कितना ही दुःख आए, तन जाए पर प्रण टल न सके।।
प्रभु मिलते सब कुछ खोने से, उर का मल धुलता रोने से।
प्रियतम का वह प्रेमी कैसा, जो विरह अग्नि में जल न सके।।
जो भोग सुखों का त्यागी है, प्रभुता से पूर्ण विरागी है।
वह पथिक पहुंच पाता जिसको, यह मन को माया छल न सके।।

*****

प्रिय सत्संग प्रेमी महानुभाव

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है एवं मेरा परम सौभाग्य है कि परम श्रद्वेय श्री महाराज जी के शरीर छोड़ने के लगभग 13 वर्ष बाद उनके द्वारा लिखे पत्रों का संग्रह अनमोल रत्नों के रूप में प्राप्त हुआ। इन पत्रों में गुरूदेव की भाषा शैली की प्रौढ़ता, उनकी दार्शनिकता, उनके अपने भक्तों के प्रति समीपता एवं परम हितैशी प्रवृति का परिचय पाठकों को मिलेगा। अहंकार, काम, क्रोध, लोभ एवं मोह आदि विकारों पर पूज्य श्री महाराज जी के दिशा निर्देश बहुत ही प्रभावी होंगे, क्योंकि कमोवेश हम सभी श्रृद्धालुओं की यही स्थिति है। इसीलिये यह पुस्तक हम सभी के कल्याण हेतु प्रेरणास्त्रोत एवं मार्गदर्शक साहित्य के रूप में बहुउपयोगी साबित होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं अपने पति श्री राकेश जी का भी आभार व्यक्त करती हूँ। जिनकी अटूट लगन एवं अनवरत किए गए प्रयासों से ज्ञानदायिनी पुस्तक के प्रकाशन का संकल्प पूर्ण हो सका। वास्तव में सदगुरू की प्रेरणा और सूक्ष्म रूप में रही उनकी उपस्थिति से ही वे इस प्रकाशन के हेतु बने है।

वन्दउॅ गुरू पद पदुम परागा। सुरूचि सुबास सरस अनुरागा ।।

अर्चना (रानी)

आर्विभाव

देवस्थली भारत भूमि समय समय पर अनेक सन्त महात्माओं को जन्म देती रही है जिनके प्रकाश पुंज से दुःखों से आक्रान्त जनमानस का अज्ञान तिमिर मिटा है। ऐसी ही महान आत्माएं भारत भूमि की आधारशिला रही हैं जिन्होंने भारतवासियों में प्राणों का सृजन किया है। बीसवीं शताब्दी में दिव्य विभूति के रूप में वीतरागी एवं परमयोगी सन्त परम पूज्यश्री पथिक जी महाराज का अवतरण हुआ।

गंगा यमुना से घिरी सगुणावतारों की पावन भूमि, उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के वकेवर ग्राम में आपका जन्म 15 जनवरी, 1909 को पवित्र ब्राह्मण परिवार में हुआ। अल्प आयु में ही पिता के शरीर छूटने के बाद आपका पालन पोषण ननिहाल साढ़ (जिला कानपुर) में हुआ। आप ग्राम के बाहर भूधरा खोद कर तप करने लगे। कुछ समय बाद ही आपने सुदीर्घ जीवी परमहंस अवधूत योगिराज नागा बाबा का शिष्यत्व ग्रहण कर ग्रह त्याग दिया। युवावस्था में तो आप घोर तप में लीन रहे। सीतापुर शहर से लगभग 45 कि0मी0 दूर कस्योरा ग्राम का घनघोर जंगल जिसमें पूज्यश्री ने अपने ही हाथों भूमि खोदकर गुफा बना ली और ऊपर फूस की मड़ैया बनाई थी उसी में वास था। पास में ही एक छोटी सी सरामन नाम की नदी और उसी तट पर एक पड़ा हुआ पत्थर, जिस पर कोपीन पहने पिण्डोर मिट्टी गीली करके उसकी मोटी सी

परत बना कर सिर पर रख कर बैसाख व ज्येष्ठ की चिलचिलाती धूप में एकटक सूर्य की ओर सुबह से सायं तक अपलक निहारते रहते थे। कितनी घोर तपस्या थी, जिसे याद करके आज भी हृदय सिहर उठता है। केवल एक मुठ्ठी गेहूँ और एक मुठ्ठी चना पानी में भिगो कर 24 घटें में एक ही बार लेते थे। फिर बहुत आग्रह करने पर गाय का दूध लेने लगे थे। नैश्ठिक ब्रह्मचारी रहकर सत्य की खोज में ही आपने अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। सदाचार की प्रेरणा देना और आध्यात्मिक जागरण लाना ही आपके जीवन का उद्देश्य रहा। मधुर कण्ठ एवं प्रांजल लेखनी से परमार्थिक काव्य और आध्यात्मिक साहित्य के सृजन एवं गायन द्वारा दिग्भ्रमित जनता को कल्याण का मार्ग दिखाते रहे। आपके द्वारा जिस ज्ञान गंगा का प्रवाह हुआ वह अक्षुण्ण है। आपका जीवन इतना पवित्र रहा कि आपके सानिध्य में भक्त जन शान्ति और आनन्द का अनुभव करते रहे। आपमें निर्मल शिशुओं सी प्रसन्नता, निसंगता, निर्लिप्तता निरन्तर विद्यमान रही। आपने अपने जीवन काल में कोई मठ–मन्दिर न बनवा कर स्वतन्त्र विचरण करते हुए पथिक नाम चरितार्थ किया। परोपकार परायण दानवीरता ऐसी कि कभी–कभी कोपीन व कमण्डल ही आपके पास शेष रह जाता था। सेवा, त्याग व प्रेम ही आपका मूल मन्त्र रहा। सद्विवेक, सद्व्यवहार और सत्प्रेम ही आपके जीवन दर्शन के त्रिरत्न रहे। आपकी सम्पूर्ण क्रियाएं, बैठना, बोलना एवं शरीर को आहार देना आदि भक्तों की प्रसन्नता के लिए ही होती थीं। विनाशी जीवन की आसक्ति

को छोड़कर अविनाशी जीवन की खोज की प्रेरणा देते आप थके नहीं। 10 जून, 1997 को हरिद्वार में आपने अपना पार्थिक शरीर त्याग दिया। वे योगी की भाँति अकिंचन, अचाह और अप्रयत्न होकर संसार में रहे। पूज्यश्री महाराज जी ने अपने जीवन काल में लगभग 60 से अधिक पुस्तकें लिखीं जिन्हें पढ़कर बड़े–बड़े विद्वान चकित रह जाते हैं क्योंकि इस तरह का ज्ञान प्रभु से हुए आत्म साक्षात्कार के बिना सम्भव ही नहीं है। लेकिन हम श्रद्धालुओं के लिए उनके ज्ञान की सीमा का आंकलन करना सूर्य के सामने दीप दिखाने के समान है। वास्तव में जीवनमुक्त, निर्लिप्त, निर्मल, तपोनिश्ठ, करूणावत्सल एवं विराट चिन्मय व्यक्तित्व की विवेचना मृण्मय मानव की शक्ति के बाहर है। यदि पुस्तक में कहीं कुछ विसंगतियां अथवा त्रुटियां हो गयी हों तो उसके लिए मै क्षमा प्रार्थी हूँ।

आज उनका पार्थिव पंच भौतिक शरीर हम नहीं देख पा रहे हैं परन्तु वह उनको हमेशा देख रहे हैं जिनके अन्तर में निरन्तर अखण्ड आस्था का दीप प्रज्जवलित है। उनका दिया हुआ ज्ञान आज भी उनके द्वारा रचित पुस्तकों के रूप में लाखों श्रद्धालु प्रेमियों का पथ प्रदर्शन कर रहा है।

पूज्य श्री गुरूदेव का मूलदर्शन यही रहा है कि जीवन में न कोई सुखदाता है न कोई दुखदाता। जो संसार से मिला है वह निश्चित रूप से छूटेगा। उसके लिए हमें तैयार रहना है। प्रभु का हर विधान मंगलमय है, इसे स्वीकार करना

प्रत्येक विवेकवान व्यक्ति के लिए आवश्यक है। क्योंकि 'हम जो चाहते हैं सो होता नहीं, जो होता है सो भाता नहीं और जो भाता है सो रहता नहीं'– यही व्यक्ति की विवशता है। वास्तव में जो व्यक्ति का किया हुआ नहीं है, विधान से स्वतः हो रहा है, वह किसी के लिए अहितकर नहीं है। विधान से स्वतः क्या हो रहा है? प्रत्येक उत्पत्ति का विनाश हो रहा है, प्रत्येक संयोग वियोग में बदल रहा है और प्रत्येक जन्म मृत्यु में बदल रहा है। सृष्टि में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। इस परिवर्तन का कर्ता कोई व्यक्ति नहीं है, अपितु सब कुछ किसी विधान से स्वतः हो रहा है, सृष्टि में अनवरत् गति है, स्थायित्व नहीं है। इस वैधानिक तत्व के प्रति सजग होते ही सृष्टि से अतीत के जीवन की खोज तथा सतत् परिवर्तनशील दृश्यों की लुभावनी कलाकृति के कुशल कलाकार में आस्था आरम्भ हो जाती है।

ध्यान मूलं गुर्रोमूर्ति पूजा मूलं गुर्रोपद्म।
मंत्र मूलम् गुर्रोवाक्यं, मोक्षमूलं गुर्रोकृपा ।।

अर्चना (रानी)

ऊँ श्री गुरूवे नमः

विनाशी देह में अविनाशी चेतन स्वरूप आत्मा को नामरूप में सस्नेह स्मरण।

समर्पित जीवन का पथ प्रदर्शन अदृश्य सर्वज्ञ शक्ति किया करती है। गुरू वाक्यों का मनन करो –

1. जो खोया ही नहीं उसे पाओगे कैसे ?
2. जो स्वयं ही हो उसे जानोगे कैसे ?
3. जो अपने को नहीं जानता वह परमात्मा को कैसे जानेगा।
4. सर्वत्र समग्र सत्ता में जो है वही परमात्मा है।
5. स्वयं से भागो या स्वयं में जागो।
6. स्वरूप शुद्ध ज्ञान मात्र है, मैं निरन्तर हूँ।
7. ज्ञान जहाँ विषय रिक्त है वहीं स्वप्रतिष्ठित होता है।
8. चेतना जहाँ निर्विषय है, निर्विचार है, निर्विकल्प है, वहीं जो अनुभूति है, वही स्वयं का साक्षात्कार है।
9. आत्मा को वही खोज पाते हैं जो सब खोज छोड़ देते हैं। वही जान पाते हैं जो सब जानने से शून्य होते हैं।
10. वहाँ देखो जहाँ चेतना सदा से है।
11. वासना, विचार, तृष्णा आदि खोया बहुत, पर पाया कुछ भी नहीं, पहले से सर्वस्व विद्यमान था।
12. विचारों की भीड़ में अपने को तथा विचार शक्ति को साधक खो देता है।
13. विचार के बादल हटते ही सत्य सूर्य के दर्शन होते हैं।
14. सत्य को पाने की प्रथम शर्त अभय होना है।
15. मनुष्य का गढ़ा हुआ भगवान भय की भावनाओं से निर्मित है।

16. प्रेम और प्रज्ञा में ही परमात्मा है।
17. मैं नहीं हूँ जो जान लेते हैं, वह परमात्मा को जान लेते हैं।
17. जहाँ कुछ पाने की आकांक्षा है वहाँ न त्याग है, न तप।
19. ज्ञान शिक्षा से नहीं स्वयं से प्राप्त होता है।
20. ज्ञान में अहंकार समाप्त होता है।
21. सीखे हुए ज्ञान से अहंकार बढ़ता है।
22. जो नित्य सर्वत्र बाहर भीतर है उसके प्रति जागरूक रहने से मन विसर्जित हो जाता है।
23. स्वयं से जो दूर है अपरिचित है, वह सत् के निकट एवं सत से परिचित नहीं हो सकता।
24. स्वयं और स्वयं का सत्य ही दूर नहीं है। शब्द स्वयं को नहीं जानने देते।
25. जो तुम्हें कोई नहीं दे सकता उसे मौन होकर शब्द छोड़कर पा सकते हो।
26. केवल प्रेम से प्रार्थना सत्य होती है।
27. केवल ज्ञान से सत्य जाना जा सकता है।

पथिक

*****

सर्वमय परमात्मा को नमस्कार।

परमात्मा ही आत्मा के रूप में तुम्हारे हृदय में हैं उनकी कृपा, अनुभूति से तुम्हारा परमहित होगा। पुण्य बढ़ाओ, पुण्य से पाप नष्ट करने पर भजन हो पाता है। परमात्मा के विधान से ऐसा कुछ नहीं होता जो न होना चाहिये। चेतना जड़त्व के गर्त में जकड़ी है वही पूर्ण होने के लिये गतिमान है। चिद अणु जड़त्व को चीरता हुआ अपनी प्रकृति की शक्ति को लेकर विकसित हो रहा है। यही उसका अपने आप में चिदविलास है। ज्ञानालोक में पहुँचने पर ही इसका बोध होता है।

तुम दूसरों को न देखना
जो मन भावे सो करै, भलो बुरो संसार
नारायण तू बैठ के अपनो भवन वुहार

जो नित्य है वही सत्य है । तुम्हीं दिव्य शक्ति हो । मन को दृढ़ता से पकड़ लो, यही नियंत्रण है । सुख दुख मन की वृत्ति है। देह भाव छोड़ो। अहं के आकारों से मुक्त होकर आत्म भाव से रहो, रमण महर्षि ने यही कहा है। देह दर्शन की इच्छा कामना भले अहंकार को करने दो, ऐसे अहंकारी जन कामना की पूर्ति में सुख मानते हैं। अहंकार की उपासना मन के भोगी करते हैं। अपने में भगवान को जानो यही गुरू निर्णय है। मन की न मानो ज्ञान की मानो। यही गुरू आज्ञा है।

गुणाभिमानी देखता दम्म, कपट, पाखण्ड ।
तभी प्रकट होता सदा ईर्ष्या, क्रोध, प्रचंड ।।

विलहि विलोकत सर्प जिमि रंग भवन के बीच ।
सज्जन पर सदगुण लखै दोश लखै ते नीच ।।

यदि प्रेम पूर्वक देखो तो सारा संसार अभिनय है। सभी अभिनय कर रहे हैं। गुरूजन यही उपदेश देते हैं कि प्रत्येक सम्बन्धी के साथ पार्ट अदा करो। ऐसा अभिनय करो कि देखने वाले सत्य ही माने। महात्मा तो संसार में जो व्यवहार करते हैं अभिनय ही करते हैं। उनका हंसना रोना, पकड़ना छोड़ना, हास्य विनोद सब अभिनय ही होता है।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी ज्ञान स्वरूप आत्मा को सद्भावनानुसार स्मरण।

एक सन्त ने कहा है कि भूतकाल की प्रवृत्तियों को सत्य और स्थायी मान कर कोई व्यक्ति अपने को निर्दोष नहीं बना सकता। अपने कर्तव्य पर, अनन्त की कृपा पर और अपने देहातीत स्वरूप पर विश्वास करने पर राग की निवृति ,परम प्रेम की प्राप्ति और अमरत्व का बोध सुलभ होता है।

दो व्यक्तियों में यदि द्वेष घृणा का भाव होता है तो दोनों व्यक्तियों में शान्ति की जगह अशान्ति ही बढ़ सकती है। लेकिन जहाँ विचार का बल है वहाँ नम्रता, सरलता, प्रेम के द्वारा द्वेष मिटाया जा सकता है। उपाय यही है कि परस्पर भूल की क्षमा मांग लें और क्षमा कर दें। विरोध में बहुत शक्ति नष्ट होती है। क्षमा कर देने या मांग लेने में पुण्य पथ खुल जाता है, पाप का आक्रमण नहीं होता।

अभिमान छोड़ कर गरीबी स्वीकार करना हितप्रद है। गुण के अभिमान में दोष दर्शन होता है। अपने साथ जो भी गुण है वह भगवान के हैं और दोष भगवान से विमुख रहने वाले अंहकार के हैं।

ऊँ सच्चिदात्म स्वरूप ब्राह्मणे नमः !

यदि तुम मुक्ति, भक्ति, शान्ति चाहती हो मेरी यह सम्मति है कि कोई सन्त महात्मा तुम्हें मुक्ति, भक्ति, शान्ति न दे सकेगा क्योंकि तुम स्वतंत्र होकर स्वयं ही सन्त महात्मा हो सकती हो। इसके लिये कहीं जाने की जरूरत नहीं, अपने सत्‌चित ज्ञान स्वरूप में बुद्धि स्थिर रखने का अभ्यास बढ़ाना है। तुम निरन्तर शुद्ध हो, मुक्त हो, शान्त हो, सुखमय हो, अपने स्वरूप को भूलकर अन्य को देखने लगना, यही बुद्धि की चंचलता है।

सभी सन्त कहते आये हैं कि दूसरों के दोष न देखो क्योंकि तुम्हारे तन मन में इतने विकार, इतने दोष हैं कि उन्हें देखते हुए तुम्हें फुरसत न मिलेगी। अपना घर साफ करो दूसरे के घर में क्यों झाँकते फिरते हो। प्रत्येक व्यक्ति का तन मन बहुत अशुद्ध हो सकता है परन्तु चेतन आत्मा ज्ञान स्वरूप परम पवित्र है। तुम व्यक्ति में सत्य ज्ञान स्वरूप की उपासिका बनो। सन्त कबीर ने कहा है :–

ई जग जरता देखिया सवै आपनी आगि।
ऐसा कोई ना मिला जासों रहिये लागि।।

यह अनुभव करो कि मैं शक्ति हूँ, मेरे द्वारा शरीर की सारी क्रिया हो रही हैं, पर मैं क्रिया नहीं हूँ। मन चंचल है शक्ति चेतना के द्वारा ही बुद्धि में विचार चल रहे हैं पर मैं बुद्धि नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ। मुझ में शक्ति के द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह की क्रिया चल रही है पर मैं काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार नहीं हैं, मैं सुख दुख नहीं हूँ।

विद्युत के द्वारा बल्ब में, कूलर में, हीटर में एवं अनेक मशीनों में कर्म हो रहे हैं, पर विद्युत सबसे असंग है, नित्य मुक्त निर्विकार है। उसी भाँति मैं चेतन स्वरूप, शक्ति सत्ता स्वरूप सबसे असंग हूँ। अपने को किसी से न मिलाओ। दृष्टा बनो, कर्ता भोक्ता अहंकार है।

मन की पूर्ति न करो, मन को उसी के मन से मिला दो

जिसकी सेवा करना हो। अभी तो मन की ही मानती हो, सभी मन के भक्त हैं। श्रद्धा को ज्ञान से संबंधित करो मुझे बहुत तृप्ति होगी। जगत में जितनी भाग दौड़ है, सब प्रपंच ही है।

गो गोचर जह लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

तुम्हारा कल्याण सद्‌ज्ञान, आत्मज्ञान सद्‌विवेक के सहारे तुम्हारे द्वारा ही होना है वह भले यहाँ आने से हो, या कहीं और जाने से जाग्रत हो सकता है। उदासीनता बुरी नहीं है, अपने को परमात्मा में समर्पित रक्खो जो कुछ भी हो, देखती रहो। यदि तुम्हें केवल ज्ञान में अज्ञान को बन्धनों से मुक्त करना है तो तुम केवल ज्ञान में अज्ञान को देखो। अहंकार, अभिमान, मोह के परिणाम को देखो। गुरू ज्ञान के आश्रय की जरूरत है, जिसे तुम वहीं रहकर लिये रह सकती हो। ज्ञानरूप में गुरू तुम्हारे साथ ही हैं, आने जाने की जरूरत नहीं। मेरे पास आना आवश्यक नहीं यह तो मोह है। जिज्ञासा की पूर्ति कहीं रहकर हो सकती है, अपने प्रश्न हल करती रहो। तुम्हारा हित हो ऐसी मेरी अभिलाषा है।

झलक होश की है अभी बेखुदी में।
बड़ी खामियाँ है मेरी बन्दगी में।।

पथिक

नमो परमात्मने

प्रायः मैंने कहा है कि संग से जो भीतर होता है वह प्रगट हो जाता है। मनोमय अहंकार में ही जन्म–जन्म के दोष चले आ रहे हैं। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह, आसक्ति, ममता, इन्द्रिय लोलुपता छोटे–छोटे जन्तुओं में पशु पक्षियों में प्रबल होते हैं। एक–एक विषय इतना प्रबल होता है जो मानव शरीर में बहुत ही स्वल्प रह गया है। लेकिन जो भी दोष हैं, वह पशु शरीरों से चले आ रहे हैं। जितना सदगुणों की अधिकता में शक्ति व्यय होती है उतना ही दोषों की तीव्रता कम होती जाती है और जितना अधिक ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि के वेग में शक्ति व्यय होती है उतनी ही गुणों की कमी रहती है।

सभी सन्त गुरूजन कहते आये हैं कि ऐसा कोई दुख नहीं मिल सकता जिसके पीछे अपनी चाह की पूर्ति का पक्ष न हो या मन में लोभ, अभिमान, कामना न हो। गुरूजन यह भी समझा चुके हैं कि दुख–सुख मानने से होता है यह कर्म का भोग भी नहीं है। कर्म के फल से या पाप पुण्य कर्मों से संयोग–वियोग, लाभ–हानि एवं अन्य परिस्थितियाँ आती हैं। यदि आत्म ज्ञान है तो कुछ आयेगा उससे ज्ञानी दुखी नहीं होगा अज्ञानी ही दुःखी–सुखी होगा। इसीलिये कहा है किसी अन्य को दुखदाता, सुखदाता मानने की मूर्खता अज्ञानी ही करते हैं।

तुमने पढ़ा होगा काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष के विकारों के वेग से भीतर विष की ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं। यही ग्रन्थियाँ क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष की अग्नि के जलते ही पसीजती हैं, विष फैलाती हैं। इसीलिये प्रायः जिनकी ऊर्जा इनके आवेग में व्यय होती हैं, वह विशेष रोगी हो जाते हैं, आयु भी कम होती जाती है। शक्ति की याचना न करो, प्राप्त शक्ति का सदुपयोग करो। शान्ति तो तुम्हारे हार्दिक प्रेम के साथ निरन्तर है। तुम परतंत्र नहीं हो, ज्ञान स्वरूप चेतन हो। अहंकार भ्रमित है, विमुख है। मेरे पास आने से कोई लाभ नहीं, केवल सद्ज्ञान विवेक के आदर की जरूरत है।

नमो परमात्मने !

गुरु वाक्य जो नित्य स्मरणीय है उनका मनन करोः–

1. अनित्य विनाशी के साथ ही नित्य चेतन सत अविनाशी का अर्थात परमात्मा के होने का क्षण–क्षण स्मरण करो।
2. परमात्मा है इसीलिये मैं हूँ। वहीं से हम–हम स्फुरित हो रहा है।
3. चाह रहित, संकल्प रहित, सबकी याद भूलकर चेतना में बुद्धि स्थिर करके मन ही मन या धीरे–धीरे गाओ

   'आनन्दमयं 'आनन्दमयं परमात्मन परमानन्दमयं'
4. तुम मुक्ति, भक्ति, ध्यान, ज्ञान कुछ न चाहो फिर जो है वही मुक्त है, सत्य है, चेतन आत्मा है, मन से मुक्ति ही ध्यान है।
5. जो मिला ही है उसे पाने का श्रम व्यर्थ है। आत्मा परमात्मा तो है ही उसे देखने की चाह व्यर्थ है, इसी में तो अहं स्फुरित हो रहा है। जो है उसी के ध्यान में आनन्दित रहो । तुम निरन्तर हो, किन्तु बनो कुछ नहीं। चेतन ही तो आनन्द स्वरूप है।
6. जहाँ अहं का आकार नहीं वहीं परमात्मा है। मेरा मानते ही आकार बन जाता है।
7. संकल्प, विचार एवं कामना शून्य होने पर अर्न्तदृष्टि खुलती है। तुम अपने शुद्ध चेतन को जान लो, अशुद्ध तन को अपना रूप न मानो। अहं रूपी अणु के भीतर विराट चैतन्य छिपा है।
8. मन को देह में न लगाकर चेतन स्वरूप में लगाओ। अहंकार में कृतज्ञता, नम्रता, प्रसन्नता, शान्ति, संतोष से भरे रहो, देह का गर्व न करो, देह को अपना रूप न मानो। खाल से मढ़ी देह में अस्थिपंजर को देखो।

9. किसी के पाप, अत्याचार, दोषों का स्मरण ही न करो, चर्चा न करो, तुमसे अधिक हृदय निवासी सर्वज्ञ परमेश्वर जानता है। उसी की कृपा से सबका हित होता है।

10. प्रियतम परमात्मा ही शत्रु में, मित्र में, साधु में, असाधु में विद्यमान है।

11. प्रत्येक घटना व कर्म के पीछे प्रभु के होने का विश्वास करो। उसी का सब है, उसी के सब प्राणी हैं, वही सर्वमय है। किसी की निन्दा न करो जो कुछ किया जाता है वह अपने ही प्रति हो जाता है।

12. प्रभु के समर्पित हो तो सब कुछ स्वीकार करो, उन्नति, अवनति, पतन, उत्थान, सब प्रेममय प्रभु पर छोड़ दो उसका विधान जो कुछ दिखाये सब मंगलमय है। तुम कुछ न चाहो क्योंकि तुम्हें यथार्थ का ज्ञान नहीं है। रोगी मन से भजन नहीं होता, रोगी तन से योग नहीं होता। अहंकार समर्पित नहीं होता, मनमुख (मन की मानने वाला) गुरू उपासक नहीं हो पाता।

13. बुद्धि का उपयोग अपने भीतर दोष दर्शन में करो। दुख ही दोषों का परिचय देता है, अपने अहंकार में इतने अधिक दोष हैं कि देखना है तो उन्हीं दोषों को देखो।

14. जितनी बार परदोष पर विचार होगा उतना ही पाप बढ़ेगा, पाप के भोग से प्रतिकूलता का दुख होगा।

15. आनन्दमय परमात्मा में सुख स्वरूप आत्मा तुम्हीं हो तब व्यर्थ सन्ताप से क्यों तपो ?

16. शक्ति सेवा में लगा दो, प्रेम को प्रभुमय होने दो। ज्ञान को सर्वसंग से मुक्त करो, यही सन्तों का उपदेश हमें सर्वोपरि प्रिय लग रहा है।

17. जब तक मन की पूर्ति की जाती है तब तक सेवा, त्याग, प्रेम की पूर्णता नहीं होती।

पथिक

*****

विनाशी शरीर में अविनाशी आत्मा को नामरूप में स्मरण!

सामवेद में एक मंत्र में बताया है कि श्रद्धा पर आसुरी वृत्ति अश्रद्धा आक्रमण करने को सदा तत्पर रहती है। दानवृत्ति पर अदानवृत्ति आक्रमण करती है। देने का संकल्प होने के बाद अवसर पर दान न देने की प्रेरणा प्रबल हो जाती है। इसी प्रकार सत्य के प्रति प्रेम पर असत् का मोह बाधक बनता है। पथिक प्रबोध में श्रद्धा के विषय में अधिक स्पष्ट दिया गया है। इस हृदय में आश्चर्य हुआ कि श्रद्धा और उदारता की अधिकता प्रायः हर एक में इतनी तीव्रता से नहीं देखी जितनी तुममें देखी गयी। इसीलिए संदेह रहता है कि यह आवेग स्थाई है, एक जाग्रति है या परिवर्तनशील है। जितनी तीव्रता से गति होगी उतनी ही तीव्रता से उल्टा लौटने की भी शक्ति होती है। तुम्हारे पास जो भी शक्ति संचित है उसके द्वारा अपने आपको बन्धनों, दुखों से छुड़ा लो। आत्मज्ञान का होना आवश्यक है। अन्य के दर्शन की अपेक्षा अपने ही दर्शन करना चाहिये। जीवन के लक्ष्य का ज्ञान भी हर एक को नहीं होता। प्रायः लोगों का लक्ष्य है सुखपूर्वक धन, मान, भोग की प्राप्ति।

1. देह हाड़, मांस, रूधिर, मलमूत्र आदि द्रव्यों से बनी है, देह को अपना रूप न मानो, अपने लिये न मानो।

2. पशु के लिये यह देह भोग का साधन है, विवेकी मानव के लिये यह सेवा का साधन है।

3. संसार के सच्चे मालिक को भूलकर के हम खुद ही मालिक

बन बैठे हैं। मिले हुए देहादिक पदार्थों का मालिक बनना अहंकार की बेईमानी है।

4. ऊपर से मिले हुए को मेरा मानते हुए भीतर से सब कुछ दाता प्रभु का समझते हुए लोभ मोह, अभिमान से मुक्त हो सकते हैं।

5. मैं प्रभु का हूँ, सभी प्राणी प्रभु के हैं, ऐसा समझकर मिले हुए के द्वारा सबकी सेवा करते रहो।

6. जो देह को देखता है, वह देह नहीं है।

7. वस्तुओं व्यक्तियों से जितने सम्बन्ध हैं, उतने ही अहं के आकार हैं और नाम हैं।

8. अहंकार जिनके संग से सुखी होता है, उन्हीं के संग से दुखी होता है।

9. दृश्य को सिनेमा की भाँति देखना है, उसे पाने का प्रयत्न नहीं करना है।

10. जिस प्रकार अज्ञान में देह भाव से रहते हो उसी भाव से सब कर्म करते हो, अब आत्म भाव से रहो।

11. सब नाम रूपों के पीछे मैं ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ यही स्मरण स्वभाव बना लो।

12. जो नित्य निरन्तर है वही आत्मा तुम हो। तुम मुक्त ही हो, आनन्द हो, इसलिए आनन्द और मुक्ति को न चाहो।

13. इन्द्रिय मन बुद्धि के आगे जो देखते हो वह संसार है, उसके पीछे देखते हो तो नित्य सत्य स्वरूप है, वही तुम हो।

14. तुम्हारे घर से कितने बुजुर्ग चले गये यदि तुम यहाँ रहने पाने और बचाने का प्रयास कर रहे हो तो महामूर्खता है।

15. जो बाँधा जाता है, वह पशु है, पशु इसलिये बाँधा जाता है

क्योंकि वह अपनी भोजन सामग्री को देखता है, अपने देखने वाले को नहीं देखता। पशु का तन बंधा है, मनुष्य का मन बँधा है।

16. मन, बुद्धि, अहंकार यह सब तुममें है तुम यह नहीं हो।

17. विवेक बढ़ाने के लिए गुरूजनों का संग और श्रद्धापूर्वक सेवा सुन्दर साधना है।

18. अपनी बुराई करने वाले के प्रति बुराई न करना पशु प्रवृत्ति का दमन करने वाले तथा मानवता का निर्माण चाहने वाले परमार्थी का कर्तव्य है।

19. अपने मन की न करके प्रियतम के मन की पूर्ति करते हुए सेवा स्वधर्म के पालन में कष्टों को सहते हुए प्रसन्न तथा शान्त रहना तपस्वी का कर्तव्य है।

20. अपनी रुचि पूर्ति का पक्ष छोड़कर अपने सुख की चिन्ता न रखकर अपने स्वामी की प्रसन्नता के लिए उसकी आज्ञा का पालन करते रहना सेवक का कर्तव्य है।

पथिक

*****

परमात्मने नमः

एक घण्टा मौन, अचाह, शून्य हो जाओ।

1. मौन का समय बढ़ाते जाओ, कमरा बन्द, शान्त, न चाह रहे, न विचार, न कल्पना, छः महीनों में ही विचारों में परिवर्तन होगा।
2. खाल से मढ़ी देह शरीर अस्थिपंजर मात्र है।
3. जो अपना आप है वही परमात्मा है।
4. परम तृप्ति का नाम परमात्मा है।
5. केवल प्रेम रह जाना परमात्मा को पा लेना है।
6. चेतना जड़त्व को तोड़ती हुई पूर्ण होने के लिए गतिमान है।
7. सत की खोज में चैतन्य उपलब्ध होगा।
8. योग अन्तःकरण को शुद्ध करता है।
9. केवल वर्तमान में ठहरो, वासना इच्छा लुप्त हो जायेगी।
10. जो स्वयं में स्थिर है, वही आत्मवान है।
11. चेतना ही चिन्तन अनुरूप तद्रुप बन जाती है।
12. सर्वज्ञान से मुक्त होना ही परम ज्ञान है।
13. स्वेच्छा से मुर्दे के समान जीना सन्यास है।
14. केवल चैतन्य स्मरण रहे और सब छूट जाये।
15. परमात्मा तो तुम्हारा स्वभाव है, उपलब्धि नहीं।
16. साक्षी देखता है, प्रतिक्रिया नहीं होती।
17. **ध्यान** :– अपनी चेतना में डूबो, बैठो या खड़े रहो। अपने में स्मरण करो तुम जहाँ हो वहीं परमात्मा है। सारा जगत दृश्य

परमात्मा में है। नदी, पहाड़, वृक्ष, तारे, सूर्य सब परमात्मा में हैं। कोई तुम्हें मारे, अपमान करे, कटु वाक्य कहे तो उसके लिए प्रभु से क्षमा चाहना क्योंकि वह अज्ञान में कर रहे हैं।

18. स्वयं में ठहरो, यहीं मुक्त हो। मुक्ति, भक्ति ध्यान कुछ न चाहो।
19. कल्पना के जाल से मुक्त हो जाओ।
20. भीड़ से ऊबते हो वहीं मन से ऊबो।
21. परमात्मा में तुम अहंकार शून्य अभी हो, अहंकार के आकार तुम्हारे द्वारा निर्मित हैं।
22. ध्यान वहीं जहां विक्षेप न मानो, जो हो रहा है सब ठीक है। सब स्वीकार करते जाओ।
23. जो मिला ही है, उसे पाने का श्रम व्यर्थ है।
24. दुखी हिंसक होता है, सुख को भीतर जान लो तो अहिंसक हो सकोगे।
25. क्रिया से वही मिलता है जो बाहर है, अक्रिया से वही मिलता है जो भीतर है।
26. पाना नहीं है जानना है, खोजना नहीं है पहचानना है। मैं, में प्रसन्न रहना है, तुम हो ही, कुछ बनना नहीं है।
27. तुम जो हो सो पूर्ण परम तृप्त, शुद्ध, बुद्ध, परम प्रिय हो, प्रेम ही हो।
28. जो स्वतः हो, किए बिना हो, वही परमात्मा।
29. मन को अहंकार में, अहंकार को माया में, माया को आत्मा में, आत्मा को परमात्मा में डालकर पूर्ण में शान्त हो।

ममतारत सम ज्ञान कहानी, अति लोभी खन बिरति बखानी।
क्रोधी सम कामी हरि कथा, ऊसर बीज वए सम वृथा।।

जीवन में प्रायः अनेकों प्रकार के दुःख हैं लेकिन शक्ति के, समय के, ज्ञान के, प्रेम के द्वारा सेवा भाव, भक्ति की कमी का दुःख नहीं है। गुण, ज्ञान, प्रेम की पूर्णता के न होने का दुःख नहीं है। इसीलिए जीवन व्यर्थ जा रहा है। आनन्द शान्ति निरन्तर प्राप्त है परन्तु हम विमुख हैं। हम साधकों में संयम की कमी है। भगवान कहते हैं संयमी जागता है असंयमी सोता है। सुख दुःख के स्वप्नों में जीवन बिता देता है। मन का कहीं अटक जाना ही मूढ़ता है। बुद्धि का धन मद में, विद्या मद में, अधिकार के नशे में मूर्छित होना ही मूर्खता है। लाखों विद्वान मूढ़ता, मूर्खता को समझ ही नहीं पाते। माने हुए सुख–दुःख के द्वन्द से छूटे बिना शान्ति स्वरूप हो ही नहीं सकते। सन्त के गुरू वाक्य जीवन में बहुत सहायक होते है। सुख–दुःख माना हुआ है सत्य नहीं है। सभी सम्बन्धी मान लेने के कारण हैं और सत्य परमात्मा से दूरी मानी हुई है जान लेने पर मानने का भ्रम समाप्त हो जाता है। गुण या दोष जो बार–बार दुहराया जाता है उसका सहज अभ्यास हो जाता है। अभ्यास से ही अभ्यास बदलता है। पुण्य कर्म का ही अभ्यास बढ़ाना है। बहुत सावधानी की आवश्यकता है। अहंकार को सम्मान के शब्द बहुत प्रिय लगते हैं। इसी सम्मोहन से बुद्धि मोह में पड़ जाती है। तभी गुरू निर्णय है कि मान–अपमान में बुद्धि को विचलित न होने दो, समस्थित रहो। एक व्यक्ति पत्नी और बालक को साथ लिए हुए सामान चोरी हो जाने की बात कहकर टिकट के रुपये मांगने आया था। कई लोगों से पंजाब पहुँचने का खर्च लिया था। धोखा खा जाना उतना खराब नहीं है जितना धन, मान, सुखोपभोग के लिए दूसरों को सम्मोहित करना खराब है।

परमात्मा को प्रणाम ।

पथिक

*****

नमो परमात्मने,

स्वल्पाहार करते रहना ठीक है, फलाहार से कमजोरी बढ़ेगी। नींद के पीछे नहीं पड़ना चाहिए। तमोगुण की अधिकता के कारण नींद, आलस्य, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकार प्रबल रहते हैं। सरल उपाय यही है कि विकार तुम पर न चढ़े, तुम क्रोधादिक विकारों पर चढ़ जाओ और इतना ही सोचो कि मैं ज्ञान स्वरूप निर्विकार नित्य शुद्ध चेतन हूँ। यह विकार मन में है। प्रत्येक विकार को उसी क्षण दृष्टा होकर देखो और ठहरो। दूसरे को न देखो, अपने को देखो कि मैं हूँ। व्यवहारिक क्षेत्र में भी क्रोधावेग में उत्तर न दो। दूसरा कोई गलती कर रहा हो, क्रोध कर रहा हो, तो तुम अपने को व्यर्थ दण्ड क्यों दो। गलती दूसरा करे और दुःख तुम भोगो। यह तो अहंकार की मूर्खता ही है। गलती करने वाला तुमसे बहुत फासले पर दूर है पर जो मन दुःखी होता है, क्रोधित होता है वह तो तुम्हारे भीतर ही है, उस मन को देखो। फलाहार करने से यह विकार दूर न होंगे। अनेक प्राणी फलाहार ही करते हैं, वे भी बहुत विकारी होते हैं। मन तो वही रहेगा, उस मन को, अहंकार को बदलने से साधना ठीक चलेगी। हम दूसरों की शिकायत करते हैं। हमारा मन कितना उद्दण्ड है उसे क्षमा करते रहते हैं। गलत स्थान छोड़ देना ठीक है परन्तु ऐसा कोई स्थान मिलेगा ही नहीं जहाँ कभी कोई असुविधा न हो।

तुम ऐसा न सोचो कि कोई तुम्हें हटाना चाहता है। अपनी कमी देखो। हमारे समर्थ भगवान भी केवल प्रेम को चाहते हैं। किसी के लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, कलह को नहीं चाहते। मनुष्य अपनी अन्धी श्रद्धा से, कल्पना से, धारणा से, अनुमान से अधिक धोखा खाता है। जिस संग से तुम्हें अशान्ति हो, अश्रद्धा हो, दोष उमड़े और दूर न हों उस संग का त्याग कर देना चाहिए। अन्तर्यामी सर्वज्ञ प्रभु का विधान कब क्या करवाए कुछ कहा नहीं जा सकता।

ताके युगपद कमल मनावहुँ, जासु कृपा निर्मल मति पावहुँ।।

किसी प्रकार बुद्धि मोह, लोभ, कामना से रहित होकर पवित्र हो जाए यही साधना की सफलता है। जीवन में कुछ न बनकर अपना सतस्वरूप जान लेना है। भिखारी दरिद्र अहंकार को समझ नहीं है। अहंकार द्वारा मान की चाह एवं लोभवश अज्ञान में अपने मन की पूर्ति में, सुख मान लेने से अनेक पाप व अपराध बन जाते हैं। भीतर के दोषों को देखना अच्छी प्रक्रिया है।

पथिक

*****

विनाशी नामरूप में अविनाशी आत्मदेव को नमस्कार !

कितने वर्ष श्रद्धा जाग्रति होने पर बीत रहे हैं यदि जीवन निर्माण का संकल्प करती तो आज सुन्दर जीवन में दिव्यता का दर्शन होता, परन्तु दिव्यता के अवतरण की प्यास प्रबल नहीं होती। लाखों श्रद्धालु अपने मन के ही सेवक बने रहते हैं। बुद्धि युक्त होकर ही कोई मन की दासता को छोड़ पाते हैं। आप में शक्ति की कमी नहीं, सत संकल्प की कमी है। मन की मानने तक शक्ति का सदुपयोग नहीं हो पाता। अर्जुन महारथी होते हुए भी मन की ही मानते रहे। भगवान की शरण होकर मोह को नष्ट कर सके। मन की मानने वाला शान्ति, मुक्ति, भक्ति से विमुख ही रहता है, वह सेवा भी नहीं कर पाता। गुरूभाव से ही वह सेवा में तत्पर होता है। मनमुख तो भोगी ही बना रहता है। विवेक जाग्रत होने पर ही मन की दासता से कोई मुक्त हो पाता है। क्रोध के अवसर पर क्षमा, अभिमान की अकड़ के विरुद्ध सरलता तथा दया, संतोष और निरन्तर चेतन आत्मा में ही बुद्धि स्थिरता का अभ्यास दृढ़ हो जाए तो मुक्ति सुलभ ही है। अहंकार दरिद्र है, भिखारी है। अपने में अपना कुछ न मानने से अहंता, ममता समाप्त होती है। जहाँ तक अनकूलता का रसास्वाद है, वह प्रभु की दया है।

दूसरों को सुख देते रहने से पुण्य बढ़ते हैं। दूसरों के प्रति हितकारी प्रवृति स्वधर्म पालन से ही होती है। इसीलिए शान्ति सुलभ रहती है। अहंकार से कभी–कभी अपराध बनते रहते हैं, उनका त्याग विवेकवती बुद्धि द्वारा ही होता है। लोभी सुखोपभोग के लिए सावधान रहता है। शान्ति प्रेमी साधक धर्ममय प्रवृत्ति के लिए सजग रहता है।

परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।

लोभ, मोह, अभिमानवश ही अपराध बन जाते हैं। अपने बल, विद्या, विवेक का सदुपयोग करते हुए जीवन को सुन्दर बनाए रहना तुम्हारे जैसे पुण्यवान व्यक्ति के लिए सम्भव है। सेवा, त्याग, प्रेम की पूर्णता के लिए सतत् सावधान रहो। यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। हम लोगों से असावधानी के कारण प्रायः दोष बनते रहते हैं। सावधान रहना साधक का सर्वोत्तम पुरूषार्थ है।

अपने विचार ही नर्क को स्वर्ग और स्वर्ग में नर्क की कल्पना गढ़ लेते हैं। जिस प्रकार मिश्री प्रत्येक वस्तु को मधुर बना देती है और लाल मिर्ची सभी को अति कटु बना देती है। उसी प्रकार प्रेम सभी कुछ को मधुर व सुखमय बना देता है और द्वेष सभी कुछ को कटु बना देता है। जैसी दृष्टि वैसा ही भाव बन जाता है। प्रेम में अपने अधिकार की वस्तु के दान का साहस अति सरल हो जाता है। ज्ञान में देखें तो संसार में कुछ पाने योग्य सुन्दर सत्य नहीं है और देने योग्य भी। अहंकार के पास जो कुछ है वह तुच्छ है परन्तु प्रेम में तुच्छ का मूल्य बढ़ जाता है।

पथिक

*****

श्रद्धालु आत्मन !

वही पढ़ो जिससे दैवी वृत्तियों/भावों की जाग्रति हो। पत्र पढ़ने के स्थान में पुस्तकों के वचनों का मनन करो। दिव्य मन्त्रणा को बार–बार पढ़ो। भूतकाल की बातों का स्मरण मुर्दा उखाड़–उखाड़ कर देखने के समान है। वर्तमान को देखो। भूतकाल का स्मरण वर्तमान से विमुख बना देता है। वर्तमान में जो भी कुछ है, चाहे देह हो, या मन हो, अहंकार हो, विचार भाव या कोई भी वस्तु व्यक्ति दृश्य सामने हो उसे ही देखो। जो सामने नहीं है, वर्तमान में नहीं है उसकी याद अनावश्यक है। भूतकाल के चित्राभास सिनेमा को कितने मनोयोग से लोग देखते हैं लेकिन वही दृश्य सामने चल रहा है उसे ध्यान से नहीं देखते। अहंकार को देखने वाले तुम्हीं तो ज्ञान स्वरूप आत्मा हो। आकार न रहे केवल ज्ञान रहे। होने का बोध मात्र रहे यही आत्मज्ञान है। मैं देख रहा हूँ कि यदि स्नेह से या लोभ से या द्वेष से या कामना पूर्ति के लिए जिसका स्मरण नहीं भूलता उसके सामने स्मरण करने वालों की मूर्ति बलात आती ही रहती है। मानसिक सम्बन्ध बना ही रहता है। किसी भी भाव से यदि भगवान से सम्बन्ध जुड़ा रहे तो बहुत ही शुभ है। किसी विरक्त ज्ञानी सन्त महात्मा अथवा भगवान भक्त प्रेमी से सम्बन्ध दृढ़ होना सौभाग्य ही है। बिना देखे ही प्रेम स्वरूप, ज्ञान स्वरूप आत्मा परमात्मा के होने का स्मरण करने की सम्मति गुरूजन देते हैं। शत्रु में, कामी, क्रोधी, लोभी, पापी, दुष्ट में भी परमात्मा को नमस्कार करने की याद बनी रहे तो दुर्भाग्य से मिला हुआ सम्बन्ध भी उन्नति का, सद्गति का द्वार बन जाता है, परमात्मा को जहाँ स्मरण करें वहीं है। जहाँ हम हैं, वहीं परमात्मा है। जिस शक्ति समय को हम अहंकार वश, ईर्ष्या में, दोष दर्शन में, क्रोधावेग में व्यय करते हैं, उसी को हम सेवा में, सत्कार व सम्मान में लगा सकते हैं। जिस बौद्धिक ज्ञान को हम धन, मान, प्रतिष्ठा की प्राप्ति में और उसकी सुरक्षा में लगाए रहते हैं उसी ज्ञान से हम अहंकार को धन,

मान से मुक्त रहने में लगा सकते हैं। जिस प्रेम में विनाशी पदार्थों को भरे रख सकते हैं उसी के द्वारा हम आत्मा, परमात्मा से पूर्ण अनुभव कर सकते हैं। दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है। सन्त कहते हैं कि आचरण महत्वपूर्ण है। दम्भ, मूढ़ता, अज्ञान, अहंकार के पार निजानन्द का अनुभव होता है। अपने में और सभी में परमात्मा का अनुभव न करने तक धोखा ही है। हम तुम सभी के भीतर सच्चिदानन्द ही है।

पथिक

*****

नामरूप में ज्ञान स्वरूप आत्मदेव को नमस्कार !

धीरे–धीरे आपके स्वभाव में परिवर्तन हो रहा है। यदि दृढ़ संकल्प करो तो वर्षों का कार्य दिनों में हो सकता है। शक्ति, समय, योग्यता को दुरूपयोग से बचाने पर ही सदुपयोग सम्भव है। अहंकार तो सभी का भिखारी और दरिद्र ही होता है। अनन्त सर्वदर्शी चेतन के प्रति समर्पण होने पर अहंकार की कठोरता प्रेम से गलने लगती है। अहंकार मेरा पने के विस्तार में जीवित है। अहं ज्ञान में बुद्धि स्थिर करते–करते आकारों की सीमा मिटने लगती है। यदि हम कुछ भी न बनें तो आकार नहीं रहेंगे। ध्यान से अहं स्फुरण में बार–बार वृत्ति ठहरानी है। भूतकाल और भविष्य की स्मृति ही ध्यान योग में बाधक है। आपकी साधना में भूतकाल के मनन में ही शक्ति अधोमुखी बनी रहती है। बहुत सावधान रहने पर विजय सम्भव है। अहंकार की बलि देने पर शक्ति के साथ शान्ति की अनुभूति होगी अभी अवसर है। क्षुद्र अहं में शान्ति नष्ट न हो। मन की न मानो, अहंकार कभी तृप्त नहीं होता।

सन्त निर्णय अनुसार कामनाओं की अधिकता से वात रोग होता है। लोभ की प्रधानता से कफ की वृद्धि होती है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध की अधिकता से रक्त विकार, पित्त की प्रबलता रहती है। सर्वप्रथम मन रोगी होता है, उसका प्रभाव तन पर पड़ता है। मन में आधि बढ़ती है,

तन में व्याधि आती है। रामायण में लिखा है –

काम, वात, कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।
प्रीति करहिं जो तीनों भाई। उपजत सन्निपात दुःखदाई।।

तुम्हारे निष्काम पुण्य के प्रभाव से श्रद्धा की जो जाग्रति है उसी के प्रभाव से तुम सन्त वचन सुनने को उत्सुक रहती हो। श्रद्धा तो सन्त सेवा की प्यास लिए है परन्तु कोई प्रतिकूल कर्मभोग बाधा डालते रहते हैं। बुद्धि का तर्क जब श्रद्धा में बाधक बनता है, वहीं अपराध बन जाता है। तुम अपने हृदय की श्रद्धा और प्रेम को अश्रद्धा व अप्रेम से बचा सको तब तुम स्वयं सन्त महात्मा हो जाओगी। तुम्हारी निष्काम सेवा से, उदारता से, नम्रता से, पवित्र भावना से जो शक्ति संचित होती है वह थोड़े क्षणों के क्रोध तथा दोष दृष्टि से सब बह जाती है। तुम सदा पवित्र देवी स्वरूप में रहती हो परन्तु क्षण मात्र में ईर्ष्या, क्रोध का आवेग चण्डी बना देता है। आदमी को जब क्रोध आता है तब उसे चाण्डाल कहा गया है। क्रोध आने पर वह चाण्डाल की तरह अपवित्र हो जाता है। तुम नित्य शुद्ध बुद्ध पावन चेतन स्वरूप आत्मा हो। तुम क्रोधी, ईर्ष्यालु, दम्भी की संगति से बचो या फिर सभी में परमात्मा को देखो।

पथिक

*****

विनाशी देह में ज्ञानस्वरूप आत्मा को नामरूप में स्मरण!

पुण्यमय जीवन उसी का है जो परमदाता प्रभु से प्राप्त में संतुष्ट, प्रसन्न रहता है और किसी को अपने सुख के लिए दुःख नहीं देता, निष्काम रह कर सुख ही देता रहता है।

परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधि माई।

इतना अवश्य है कि जो अपने ही दोष से दुःखी रहता है उसमें तुम्हारा अपराध नहीं है। इतना ही हम सभी को स्मरण रखना चाहिए कि

अपने सुख के लिए किसी को दुःख न दिया जाए, किसी का अपमान न किया जाए, किसी से घृणा न की जाए। परमात्मा ने तुम्हें जो कुछ दिया है उसी में प्रसन्न रहो। मनुष्य से आशा न करो, मनुष्य स्वयं ही भिखारी है। परमात्मा ही पूर्ण दाता है। तुम्हें जो शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता सुलभ है उससे सेवा करती रहो। अपने लिए किसी से कुछ न चाहो। तुम्हारे लिए परमात्मा ही देने को पूर्ण समर्थ है। अपनी स्वतंत्र प्रसन्नता से सबको प्रसन्न रहने दो। शक्ति सेवा के लिए, ज्ञान अपने परीक्षण के लिए और प्रेम प्रभु के लिए होना ही मानव के लिए परम हितकर है।

लोग कहते हैं महात्मा क्यों बीमार होते हैं उन्हें यह पता होना चाहिए कि देह, इन्द्रियाँ, मन महात्मा नहीं होता। जो जीवात्मा परमात्मा से अभिन्नता का अनुभव करे वही महात्मा है। जो संसार के पदार्थों को अपनी वस्तु मानता है वही बद्ध जीवात्मा है। ज्ञान का आश्रय लेकर प्रसन्न रहो, निर्मल रहो।

पथिक

*****

प्रिय नामरूपों में प्रकाशित परम प्रेमास्पद आत्मदेव को प्रणाम

पशु को स्ववश में करके प्रभु तक पहुँचने का पथ स्वधर्म है। धर्म की पूर्णता सर्वहितकारी प्रवृत्ति से होती है, इसके लिए निष्काम सेवा, दान आवश्यक है। पराधीनता में मिलने वाले सुख में आसक्ति रहने तक सेवा पूर्ण नहीं हो पाती। ममता भी सेवा में बहुत बाधक बनती है। जिससे ममता होती है उसी से कामना पूर्ति की आशा रहती है। ममता रहने तक हम प्रभु को सब कुछ नहीं मानते। अपना मानने से ही अधिकारों की मांग होती है। अधिकारों का त्याग किए बिना कर्तव्य की पूर्णता नहीं होती। दूसरों से सुख चाहना अधर्म है, पराधीनता है। स्वयं का पागलपन स्वयं को नहीं दीखता। अपने को प्रभु के हाथों में छोड़ दो। देखते जाना कि क्या आता है क्या जाता है प्रभु तो अपने साथ हैं

हीं। सन्त कहते हैं कि भयंकर दुख से बचना हो तो सुख के भोग में शक्ति नष्ट न कर, सेवा करो। सेवा करते हुए अपने मन की पूर्ति न चाहो। दूसरे के कर्तव्य न देखो। अहंकार का बोझा उतार दो, तभी समर्पण होगा। बुद्धियुक्त होकर देखो किसी के साथ जो किया है वही वापस लौटेगा। कोई गाली दे, अपमान करे, क्रोध करे तब उसे मेहनत करते हुए देखो अपने को सजा क्यों दो। शान्त, स्वस्थ रहना चाहिए। जब हम अशान्त हो जाते हैं तब स्वस्थ नहीं रहते। सन्त मत है कि अकेले रहकर जितना शान्त मौन में ठहरोगे उतना ही जीवन का वैभव एवं विश्राम सुलभ होगा। पूजा, पाठ जप आदि से यह नहीं होता।

अहं को आकारों से मुक्त करने पर ही समर्पण पूर्ण होता है। जगत में वे ही दरिद्र हैं जो प्रेम को नहीं जानते। क्योंकि मान्यताओं के आकार अहं ज्ञान को ढके हुए हैं। तुम कुछ न बनो। परमात्मा के हाथों में छोड़ दो। वह बनाये तो बनो मिटाए तो मिटो। अहंकार मिटने पर केवल प्रेम बचता है। खोये हुए अवसरों के लिए कई–कई जन्म प्रतीक्षा करनी पड़ती है। सेवा, त्याग, दान के अवसर मिले परन्तु अहंकार ने सब नष्ट भ्रष्ट कर दिया। मनुष्य अपनी अहं कृतियों से बंधता है अतः मुक्त होने के लिए स्वतंत्र है। बीते हुए की याद न करो, भविष्य की चिन्ता न करो, वर्तमान को सुन्दर बना लो। अभी शक्ति समय है। बाहर कुछ नहीं छोड़ना है। भीतर मन की दरिद्रता को पहचानना है और हृदय को उदार विशाल बनाना है, इसके लिए प्रेम को बांटते रहना है। प्रेम तो अनन्त परमात्मा से मिलता ही रहता है, बांटने से कभी घटता नहीं।

कई बार सुना है कि जितना अधिक मान की चाह उतना ही अपमान का दुःख, जितना अधिक लोभ, मोह उतना अधिक हानि का, वियोग का दुःख। किसी अन्य को दुःखदाता मानो ही नहीं। विद्या का सदुपयोग अपने जीवन को सुन्दर बनाने में करो। यह समय व्यर्थ अनर्थ में तुमने खो दिया तो तुम्हीं दोषी हो। बहुत कुछ अभी बचा है।

सैकड़ों अशिक्षित तुमसे अधिक विनम्र है, शान्त हैं, प्रसन्न हैं। तुम शिक्षित होकर अशान्त हो, दुखी हो, क्योंकि अपने दोष नहीं दिखते। अहंकार भिखारी है, दरिद्र है। अब अपने प्रियजनों के प्रति मान के, प्यार के, अधिकार के दानी बनो, दीन बनो, अपना कुछ न मानो। अब अकिंचन होकर अपने प्रभु के समर्पित हो जाओ वह प्रभु चाहे भीतर देखो या बाहर देखो। अभी जिन लोगों में केवल श्रद्धा आगे है वही मेरे प्रति दैवी गुणों की जाग्रति से संतुष्ट हो रहे हैं। उन्हें दोष दर्शन का अवकाश ही नहीं है क्योंकि मुझसे कोई सुखोपभोग की कामना नहीं है। कहीं मैंने पढ़ा था :–

1. पदार्थों का जो परस्पर आकर्षण है वह विद्युत का है।
2. दो शरीरों के मध्य जो आकर्षण है वह कामोपभोग का है।
3. दो मनों के बीच जो आकर्षण है वह प्रेम के कारण है।
4. दो आत्माओं के बीच जो आकर्षण है वह सात्विक श्रद्धा का है यही श्रेष्ठतम है।

मेरे संग से लोगों को वही प्राप्त होता है जो अन्तर चेतना में है। इसी प्रकार अन्य सभी के संग से मेरे भीतर वही प्रकट होता है जो बाहर नहीं दिखता। जो साधु स्वभाव में जितनी देर जाग्रत रहते हैं उतने समय साधु ज्ञानी भक्त सब कुछ सुन्दर ही दिखते हैं। इतना ही अन्तर है किसी में क्रोध पत्थर की लकीर की तरह, किसी में पानी की लकीर की तरह, किसी में बालू की लकीर की तरह दिखता है। एक सन्त फ्रांसिस की कथा पढ़ी थी। अपने शिष्य के साथ एक गाँव जा रहे थे, मार्ग में आँधी वर्षा के कारण पेड़ के नीचे रूकना पड़ा, भीग गए। गाँव दूर था। रात हो गई। सन्त ने चलते–चलते कहा कि साधु वह नहीं है जो अन्धों को आँखे दे सकता है, बीमारों को ठीक कर सकता है, किसी मुर्दे को जिन्दा कर सकता है। वह वास्तविक साधु नहीं है जो पशुओं की भाषा समझता है एवं सारे जगत का जिसे ज्ञान है। वह भी

वास्तविक साधु नहीं है जो दूसरों के मन की बात बता देता है। जो वस्त्र नहीं पहनता, जो शास्त्रों का पण्डित है, जो बहुत सुन्दर कुशल वक्ता है, वह भी वास्तविक साधु नहीं है। दोनों भीगे वस्त्रों में कीचड़ से लथपथ चलते रहे। गाँव मे दीये दिखने लगे तब शिष्य से पूछे बिना न रहा गया, उसने पूछा तब साधु कौन है। गुरू ने उत्तर दिया कि हम गाँव पहुँचने को हैं। सराय का द्वार खटखटायेंगे द्वारपाल पूछेगा, तुम कौन हो? और हम कहेंगे कि तुम्हारे दो बन्धु, दो साधु, यह सुनते ही यदि वह कहे कि भिखारियों मुफ्तखोरों यहाँ से भाग जाओ। यहाँ तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है और वह द्वार बन्द कर ले। हम भूखे थे आधी रात में फिर द्वार खटखटायेंगे। वह अबकी बार निकले लकड़ी से चोट करे और कहे बदमाशों परेशान मत करो। यह सुनकर हमारे भीतर कुछ न हो वहाँ वह शान्त शून्य बना रहे और द्वारपाल में भी प्रभु दिखता रहे तब वही वास्तविक साधु है।

पथिक

*****

विनाशी नामरूप में अविनाशी आत्मदेव को नमस्कार !

कितने वर्षों बाद तुमने पूछा कि क्या करना चाहिए। अहंकार अभी बहुत कठोर है। धीरे–धीरे पिघलेगा, गलेगा, वही तरल प्रेम के रूप में स्वयं के लिए तृप्ति कर होगा। ज्ञान तो अपना स्वरूप ही है। उस ज्ञान का भोगी अहंकार परतन्त्र होकर सुख–दुःख का भोगी बनता है। तुम जो अध्ययन करती हो, वह बहुत शुभ है अब स्वयं का अध्ययन सावधानी से करो। साक्षी होने पर ज्ञान चक्षु खुलते हैं। सत् चेतन आत्मा प्रतिपल विद्यमान है, इसके ध्यान के लिए कहीं जाना नहीं है। ऐसा कोई क्षण नहीं जब सत् नहीं हो। सत्संग के लिए शान्ति के लिए कहीं जाना भ्रम है। जो सुख के लिए दौड़ता है, महर्षि वशिष्ठ ने उसे गधा कहा है। आत्मा ईश्वर चेतन एक ही है। कामना द्वारा शक्ति का क्षय होता है।

चेतन आत्मा होकर रहो। जो स्वयं में तृप्त, संतुष्ट है, वही अहिंसक है। आत्मवान होकर रहने से अहंकार मिटता है। आत्मा ही अहंकार मय है, अहंकार ही मनोमय है, मन ही इन्द्रिमय है। सब दोष, गुण, भय चेतन आत्मा में ही है। जहाँ–जहाँ सुखाभास होता है, वहीं विषयविष है। पढ़ाने के अतिरिक्त किसी के बीच में रहने पर बहुत कम बोलो, सलाह न दो, ज्ञान का अभिमान आसानी से नहीं दिखता। शान्त, मौन रहने का समय बढ़ाते रहना उन्नति का उपाय है। सुविधाओं का सुख ही पराधीन बनाता है। दुःख से सभी हटना चाहते हैं परन्तु सुख से आत्म ज्ञानी ही हट पाता है। कुछ गुरू वाक्य बहुत सुन्दर हैं हम लोगों के लिए निरन्तर स्मरणीय हैं :–

1. जो बिना परिश्रम के अपने आप में प्राप्त हो जाये उसी का नाम परमात्मा है।
2. यदि तुम शरीर को ढूढ़ने चलोगे तो संसार में पाओगे, अपनी खोज करोगे तो परमात्मा में पाओगे।
3. ऐसा कोई क्षण नहीं जब आत्मा परमात्मा न हो। जो निरन्तर सुलभ हो उसकी प्रायः विस्मृति रहती है। जो नहीं है उसी की याद आती है। परमात्मा की विस्मृति रहती है।
4. बल के द्वारा संसार की सेवा हो सकती है, यदि ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, सुखोपभोग से बचा लिया जाए।
5. ज्ञान के द्वारा मुक्ति मिल सकती है, यदि विनाशी पदार्थों को अपना न माना जाए।
6. बिना देखे परमात्मा में प्रेम स्थिर किया जा सकता है यदि अपने आप को परमात्मा में होने का विश्वास दृढ़ किया जाए।
7. यह तभी सम्भव है जब जीवन में किसी को सुखदाता या दुःखदाता न माना जाए। इसी मान्यता के कारण मानव रागी द्वेषी बना रहता है।

8. राग द्वेष के रहते त्याग और प्रेम की पूर्णता नहीं होती। प्रेम की पूर्णता में ही आनन्द है। त्याग की पूर्णता में ही परम शान्ति है।

9. हम सभी साधक प्रायः राग द्वेष की सीमा को अज्ञानवश पार नहीं कर पाते हैं। इसीलिए यज्ञ, दान, तीर्थ, सेवन अथवा कथा श्रवण आदि शुभ कर्मों द्वारा भी शान्ति, मुक्ति और भक्ति से वंचित हो रहे हैं।

यह पथिक अपने प्रभु को स्मरण करते हुए इस समय आनन्दित है।

पथिक

*****

सर्वनाम रूपधारी परमात्मा को नमस्कार !

नौरात्रि से पुरूषोत्तम चल रहा है। अन्न, दूध, साग सब बन्द है। शहद, पानी और सेब से काम चल रहा है। शरीर दुर्बल भले ही हो पर शक्ति तो परमात्मा से आती है, वह कम नहीं है। भोजन से अणु बढ़ते हैं, घटते हैं, शक्ति नहीं मिलती। यह निरन्तर स्मरणीय है कि हम सब में परमात्मा की शक्ति है। परमात्मा की ही प्रीति है, परमात्मा का ही ज्ञान है। देहादिक पदार्थ परमात्मा की प्रकृति के हैं। हम देह नहीं है, देह मेरी नहीं है। संसार में अपना कुछ नहीं है। सब कुछ परमात्मा का है। हम परमात्मा के ही हैं। इतना अधिक स्मरण रखना है कि देहादिक वस्तुओं, व्यक्तियों से आत्मीयता मिटाकर परमात्मा के साथ आत्मीयता प्रीयता दृढ़ हो जावे। प्रीति में ही तो प्रियतम प्रभु का निरन्तर वास है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी।।

तुम जितना भी चेतना में बुद्धि, मन स्थिर रखोगी उतना ही चेतना शक्ति विज्ञानमय कोष में उठेगी। कृतज्ञता, नम्रता, शान्ति, संतोष से अहंकार को भरे रहो।

आपने कई बार सुना है कि दपर्ण में मुख वैसा ही दिखता है जैसा होता है। उसी भांति संग से हमारे भीतर जो कुछ गुण–दोष होते हैं, वही प्रकट हो जाते हैं। कोई दूसरा सुख या दुःख का देने वाला नहीं है। हम जैसा मान लेते हैं वैसा ही प्रतीत होता है। जब हम अन्य को सुखदाता दुःखदाता मानते हैं तभी रागी, द्वेषी बनते हैं। जब तक हम रागी द्वेषी हैं तब तक प्रेम के राज्य में आनन्द पाने के अधिकारी नहीं हो सकते। हम लोग इतने स्वतंत्र हैं कि जैसा भी पापी, पुण्यवान होना चाहें वैसा ही हो रहे हैं। हम गुरू ज्ञान का तथा सदुपदेश का अनादार करने के कारण ही स्वतन्त्रता का दुरूपयोग करते हुए अशान्त दुःखी होते हैं। हम स्वतन्त्रतापूर्वक प्रेम को देते रहें तो कोई रोकने वाला नहीं परन्तु अहंकार भिखारी है, दरिद्र है यह मांगता ही रहता है। यदि कभी देता भी है तो लेने की पाने की आशा से देता है। जो प्रेम चाह की पूर्ति में रूक जाता है, वही तो मोह है। परमात्मा ही प्रेम का अनन्त श्रोत है। प्रेम लेने के लिए नहीं प्रत्युत देने के लिए होना चाहिए। परन्तु मूढ़तावश हम लोग सौभाग्य की दिशा में न चलकर दुर्भाग्य की दिशा में दरिद्र बने रहते हैं। कई बार सुना है कि ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध से हम लोग अपना या दूसरे का हित कर ही नहीं सकते। हम लोग गुरू वाक्यों का अनादर करते हुए दैनिक अपराध करते रहते हैं तब जो करना चाहिए वह नहीं कर पाते। हमारे भीतर बीते हुए का मनन चलता है यह भूत है, आगे का चिन्तन होता है यही प्रेत है। यही दोनों वर्तमान में कर्तव्य परायण एवं सत्य का चिन्तन नहीं होने देते। जब हम दूसरों को दोषी मानकर दुःखी होते हैं तब अपने प्रति हम घोर अपराध करते हैं। यह दुर्भाग्य गुरू वाक्यों के स्मरण मनन से सौभाग्य में बदल सकता है।

पथिक

*****

नमो परमात्मने !

दो बजे पंजाबी बाग आ गया था। एक झोला वहीं रह गया। यदि उसे मैं लिए होता तो न भूलता। सेवा करने वालों के कारण अपने से भूल हो जाती है। यही पराधीनता का परिणाम है। मुझे कोई परेशानी नहीं है। याद आते ही यह विचार आया कि अभी तो शरीर की सुविधा का सामान ही छूटा है एक दिन यह शरीर ही छूटने वाला है, जो सदा रहने वाला है उसी का स्मरण रहना चाहिए। मैं झोले में जब सामान देखता था तब मन में आता था कि इतना व्यर्थ का सामान क्यों ढोया जाता है। शरीर की आवश्यकता तो बहुत कम वस्तु की है। एक आदत सी बन गई है। अन्न, जल सभी जगह मिल जाते हैं। चाहे जितनी देह की सेवा की जाए फिर भी दुःख आ ही जाता है। कष्ट भी उतना ही अधिक होता है जितना सुविधा का सुख भोगा जाता है। सामान छूट गया तो बहुत हल्कापन मालूम होता है। कोई कष्ट नहीं है। सब कुछ छूट जाए तब भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए क्योंकि सत्य परमात्मा तो निरन्तर साथ ही है। तुम्हें दुःख अवश्य हो रहा होगा क्योंकि तुम्हारी सेवा की आदत है, परन्तु विवेक हर जगह नहीं रहता। कभी लेने का लोभ रहता है वही लोभ सेवा करने में बदल जाता है। पहले खाने का लोभ फिर खिलाने का लोभ भी आसानी से नहीं छूटता। मैं प्रसन्न हूँ।

ज्ञान में देखने से ज्ञात होता है कि गीता में कृष्ण नहीं दिखते, रामायण में भी राम की कल्पना ही होती है। वेदों में ब्रह्म नहीं दिखता। सभी ओर से सूचना मिलती है कि जहाँ हम स्फुरित हो रहा है वहीं आत्मा, परमात्मा, राम, कृष्ण विद्यमान है अहंकार अपनी मान्यताओं को ओढ़कर अपनी वृत्तियों से संतुष्ट सुखी हो रहा है। प्रतिकूलता से दुःख होता है। अधिक यात्रा से शरीर में प्रतिकूलता रहती है। कहीं एक जगह ठहर नहीं पाता।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी ज्ञान स्वरूप आत्मा को नामरूप में स्मरण !

अपना अध्ययन करो। सुन्दर सद्गुणों के मध्य में असुन्दर दुर्गुणों को हटाने के लिए सावधान रहो। श्रद्धा को अश्रद्धा से, दानवृत्ति को अदान से और सत् को असत् के आवरण से बचाते रहना सौभाग्य निर्माण की कला है। दुःख की पूर्ण कृपा होती है तभी अहंकार दीन होकर झुकता है या फिर भरपूर सुखी ही शान्ति मुक्ति चाहता है। जो न पूर्ण दुःखी है न पूर्ण सुखी है वही उपदेश के अनुसार नहीं चल पाते। सदा प्राप्त परिस्थिति पर संतोष करो। जो कुछ जाये उसकी चिन्ता न करो, जो बचा है उसको देखो, सदुपयोग करो, क्योंकि किसी दिन वह भी न रहेगा। प्राप्त का सदुपयोग, अप्राप्त की कामना का त्याग करना विवेकी का कर्तव्य है। उपनिषद में एक मन्त्र है।

'आत्म तीर्थ महातीर्थ अन्य तीर्थ निरर्थकम।

चिन्तमतर्गत दुष्टं तीर्थ स्नानैन शुद्धयति'।

चेतन आत्मा ही महातीर्थ है अन्य तीर्थ निरर्थक हैं क्योंकि भीतर यदि चित्त दुष्ट है तो बाहर तीर्थ स्नान या सेवन से शुद्धि नहीं होती।

मनुस्मृति में लिखा है कि सयानी लड़की की शादी माता–पिता न कर सकें तो स्वयं ही वर को खोज लेना अनुचित नहीं होता। सम्बन्ध करा दो, बाकी भाग्य पर निर्भर है, उसके भाग्य में यही सम्बन्ध है निश्चित समझना। यदि कोई बाधा नहीं आती तो आगे की चिन्ता व्यर्थ है। थोड़े दिन का खेल है। अच्छा–बुरा मानना मन की भ्रान्ति है। संसार में सब कुछ मिथ्या है, परमात्मा ही सत्य है। यदि बाधा न आये तो सम्बन्ध तय करा दो, कमी रहे तो मदद करते रहना। लड़का कुछ कमाता है, तब ठीक है यदि बेकार होता तब ठीक न था। तुम मन की अनुकूलता का पक्ष न लो। प्रतिकूलता में उन्नति की दिशा मिलती है।

यदि श्रद्धालु व्यक्ति के सामने दुःखद परिस्थिति है तो बहुत ही शुभ है, नहीं तो वह सुखोपभोग में ही जीवन व्यर्थ खो देगा। अश्रद्धालु के लिये तो दुखद परिस्थिति से जीवन उत्थान की आशा नहीं होती। जो वह श्रद्धा रखती हैं, उन्हें कुछ समझाया जा सकता है। सुखद में सेवा कर सकती हैं और दुखद परिस्थिति में त्याग का पाठ पूरा कर सकती हैं।

पथिक

*****

नमो परमात्मने !

अपने सुख का पक्ष लेकर यदि किसी की उपस्थिति से खिन्न हुआ जाता है तब तो यह महामूढ़ता है, दरिद्रता है। यदि दूसरे की अशान्ति को सोचकर उपस्थिति से उदासीन रहना दिखता है तब तो हित भावना है। अपने तन से, मन से, वाणी से दूसरों का हित चाहना पुण्य है। अहित चाहना पाप है।

श्रद्धा की रक्षा करो, अश्रद्धा का आक्रमण न होने दो।
उदारता पर कृपणता का आक्रमण न होने दो।
क्षमा को क्रोध से न ढकने दो।
आत्मज्ञान को देहाभिमान से न ढकने दो।
सेवा को स्वार्थ से दूषित न होने दो।
शक्ति को व्यर्थ अनर्थ से नष्ट न होने दो।
अपने चेतन स्वरूप में बार–बार बुद्धि को विश्राम दो।

मैंने कई बार लिखा और कहा भी कि ऐसा कोई दुःख नहीं हो सकता जो हमारे ही दोष के कारण न हो। हमें जितने अधिक मान की या किसी के प्यार की या धन की, अधिकार की, चाह होगी उतना ही अधिक हमें उसके न मिलने पर दुःख होगा। यह तुम्हारी बुद्धि क्यों नहीं

पकड़ती। हमें दूसरों का क्रोध, दूसरों की ईर्ष्या, दूसरों की घृणा नफरत आदि दोष दिखते हैं पर अपने भीतर ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा नहीं दिखते। हम अपना अपमान समझकर दुःखी होते हैं लेकिन भीतर अभिमान नहीं देख पाते। जब हम दूसरों के द्वारा अपनी हानि से दुःखी होकर दूसरों को दुःखदाता मानते हैं तब अपने भीतर का लोभ नहीं दिखता। हम दूसरों को दोषी, अपराधी, दम्भी, छली मानकर अशान्त होते हैं तब अपने भीतर यही दोष नहीं दिखते। जिस पर हमारा कोई अधिकार नहीं उसे अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं। परन्तु अपने मोही, अभिमानी, सुखलोलुप, कामी मन पर अधिकार नहीं जमा पाते इसी कारण से अशान्ति बढ़ती जाती है। अशान्त होते हैं अपनी मूढ़ता तथा बुद्धि की मूर्खता के कारण परन्तु शान्ति पाने के लिए दूसरों के पास जाते हैं यह भी कितनी नासमझी है। अशान्त हम हैं तब शान्ति कौन देगा। भगवान बुद्ध ने यही किसी से कहा था कि तुम अपनी, कामना, वासना पूर्ति न होने से अशान्त हो, शान्ति के लिए दूसरों के पास भागते हो। गीता में भगवान ने बताया कि सब कामना छोड़ दो, सुख की स्पृहा छोड़ दो, ममता रहित, अहंकार रहित हो जाओ बस शान्ति ही शान्ति ही है। दोषों के त्याग से तत्काल शान्ति सुलभ हो जाती है, यह गीता का वचन है।

हम भगवान की बात न माने और इन्सान से शान्ति, सुख पाने की आशा करते हुए जीवन खोते रहें यह दुर्भाग्य ही तो है। गीता में कहा है कि विषय के ध्यान आते ही संग की कामना होती है। कामना पूर्ति के क्षणिक सुख से आसक्ति बढ़ती है। उसमें जो बाधक होता है, तब क्रोध प्रबल होता है। क्रोध से कर्तव्य की, स्वरूप की एवं प्रभु की विस्मृति हो जाती है। स्मृति नष्ट होने पर बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि नाश से विनाश का दुःख भोगना पड़ता है। अशान्ति, एवं दुःख से हमारी बुद्धि ग्रस्तता का परिचय मिल रहा है। फिर भी हम अपनी बुद्धिमता का कितना गर्व करते हैं, अन्तर्यामी बनते हैं। दूसरे के दोषों को, छल कपट

को जानने का दावा करते हैं। हम अपने प्रति कटु वाक्यों को सुनकर वर्षों से सम्हालते आ रहे हैं। परन्तु जो गीता, रामायण के गुरू वाक्य हैं उन्हें भूल जाते हैं। उन्हें नहीं सम्हालते, जिनसे हमारा जीवन निर्दोष हो सकता है, अशान्ति से मुक्ति मिल सकती है। हम ऊपर से किसी को प्रणाम करते हैं परन्तु भीतर से उसके ज्ञान का, कथन का, सद्प्रेरणा का घोर अनादर करते हैं। हमारा अहंकार अपने प्रतिकूल लेखों को सजाये बैठा है परन्तु गुरू ज्ञान से भरे पृष्ठों को देखना नहीं चाहता। हमारी बुद्धि भ्रष्ट है, केवल आत्मा की ओर अभिमुख होने पर बुद्धि शुद्ध हो सकती है। अब अहंकार की दरिद्रता को पहचान लो। दानी होकर सुखी रहो, दरिद्रता छोड़ दो, तुम परमात्मा की ज्ञान स्वरूप आत्मा हो, तुम देह नहीं हो।

पथिक

*****

नमो परमात्मने !

सन्त समझाते हैं : कांटों में रहकर फूल बनो। किसी के प्रति प्रतिकूल कटु शब्द न कहो। काम, क्रोधादि, विकारों में शक्ति अधोमुखी रहती है। दर्द को, दुःख को, साक्षी रहकर देखो। आप लोग बहुत पुण्यों के धनी हो। सेवा के द्वारा पुण्य बढ़ाते रहो। जो चाहोगे वही मिलेगा, गलत हो या सही। धन सम्पत्ति सभी छूट जायेंगे उसके द्वारा सेवा करते रहो, उसे सुखदाता मान कर मोही लोभी न बनो। किसी को सुखदाता मानना ही पराधीन रहना है। जीव स्वयं सुख स्वरूप है। शक्कर स्वयं ही मीठी है वह हलुआ, पेड़ा, बर्फी आदि वस्तुओं को मीठा मानकर पाने के लिए तरसती है, यही अज्ञान है। सुखदाता, दुःखदाता मानने से ही राग, द्वेष हो जाता है। सन्त वचन हैं :–

सोई ज्ञानी, सोई गुणी, सोई दाता, ध्यानी।
तुलसी जाके चित्त भई राग द्वेष की हानि।।

अपने प्रेम से तृप्त संतुष्ट रहो। प्यार, अधिकार, मान, सत्कार देते रहो, चाह ही भिखारी, दरिद्र बनाती है। आप लोग बहुत भले पुण्यवान हो। अपने को जानो, तुम परमात्मा के ही अंश हो, देह आदि सब कुछ संसार से मिला है। वह तुम्हारे साथ सदा न रहेगा। सत् चेतन आनन्द सदा तुम्हारे साथ है।

प्रवचन से सात्विक मनोरन्जन होता है। श्रद्धा बनी रहती है, अवसर न मिलने पर वह भी ढक जाती है। अपने सत् स्वरूप की अथवा नित्य प्राप्त सद्चित आनन्द परमात्मा की विस्मृति हो रही है। दूरी तो होती नहीं इसीलिए स्मरण मात्र से वह सुलभ रहता है। मन शब्द, स्पर्श, रूप, रस इत्यादि विषय को पकड़ लेता है परन्तु परिणाम नहीं देख पाता। मनुष्य के मन ने झूठ के साथ समझौता कर लिया है। जो दिखता है सब झूठ है लेकिन जो देखता है वही सत्य है। वह सत्य ज्ञान स्वरूप आत्मा तुम्हीं हो। मन कहेगा हटाओ शुष्क ज्ञान की बातें। मन को अपनी रूचि की पूर्ति में ही रस आता है। एक दिन जो दिखता है, वह नहीं रहेगा तब दुःखी होता है। लेकिन जो देखता है सदा रहता है उसे मन देख नहीं पाता। मन की मानो नहीं और मन से लड़ो नहीं, बस धैर्य से देखते रहना है।

पथिक

*****

मेरे परमात्मन !

सबमें तुम्हें प्रणाम है अनन्त प्रभो! वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल, आकाश पंच तन्मात्राएं प्राण, इन्द्रिय, मन, चित, अहंकार सम्पूर्ण जगत एवं सगुण और निर्गुण सब कुछ केवल आप ही हैं।

(श्रीमदभागवत्)

पत्र से आपको निराशा हुई यह भी प्रभु की कृपा है। संसार से निराश होने पर ही सच्चा भजन हो पाता है। सर्वाश्रय त्यागने पर परम आश्रय उपलब्ध होता है। प्रभु की विशेष कृपा है आप सब सहारों से मुक्त हो। अब यह सहारा भी क्यों रहे, व्यर्थ है। उसी का आश्रय लो जो कभी नहीं छूटता।

जो इस शरीर का सहारा लेते हैं उन्हें कभी दुःखी होना ही पड़ेगा, फिर यह शरीर महा अपवित्र है। अश्रद्धा बहुत अशुभ है, श्रद्धा बहुत शुभ है। जब बुद्धि मौन होती है तभी श्रद्धा होती है। आप निर्भय, निश्चिंत होकर बार–बार अपने अविनाशी ज्ञान स्वरूप में बुद्धि स्थिर करो। आप अपने को देहमय, मनमय न मानकर केवल चिन्मय स्वरूप में बुद्धि को स्थिर करो। तुम सद्चेतन आनन्द स्वरूप हो। इसी प्रकार यह शरीर, मन, बुद्धि अहंकार, असत् है, जड़ है, दोष दुर्गुण से भरपूर्ण है। लेकिन चेतन तत्व नित्य पावन है, वह तो प्रेम स्वरूप, ज्ञान स्वरूप एवं सत्य है, वह तुम्हीं हो। तुम अपने आप में ही श्रद्धा करो। अपने को देह, मन के साथ मिलाना ही असत् संग है। अपने प्रेम को, श्रद्धा को, स्वयं चेतन स्वरूप आत्मा में स्थिर रखना सत्संग है। अपने भाव को ही देखो, अपने आप में श्रद्धा करो, प्रेम स्वयं तुम्ही हो। प्रेम में ही समस्त पुण्य है, अप्रेम में समस्त पाप हैं। चेतन आत्मा में बुद्धि को स्थिर करो या फिर ऐसी बुद्धि से भी असंग हो जाओ जो नीचे ही देखती है जो परदोषदर्शी है। परमात्मा को बार–बार प्रणाम है।

पथिक

*****

नमो परमात्मने !

राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहिं तह मोह निशा लवलेशा।।

प्रत्येक हृदय में सत्चेतन आनन्द स्वरूप सत्य प्रतिष्ठित है।

आनन्द सिन्धु मध्य तव वासा। विन जाने कत भरत पिपासा।।

कई बार बताया गया है कि ध्यान किया नहीं जाता, प्रत्युत जो निकट से निकट है उसे ध्यान से देखना चाहिए। अज्ञानी, मोही, लोभी जो निकट नहीं है उसका स्मरण करते हैं। जो राम, कृष्ण, गुरू प्रत्यक्ष नहीं दिखते उस मूर्ति का ध्यान करते हैं। लेकिन जो निकट से निकट देह है उसे अथवा उससे भी अधिक निकट प्राण है, धड़कन चलती है, मन है, चित्त है, बुद्धि है, अहं के आकार हैं इन सबको ध्यान से नहीं देखते।

1. यह देह मैं हूँ, यह सब मेरा है, यह कहते–कहते मनुष्य उसीमय बन गया है। तब मैं चेतन हूँ,, सत हूँ यह जड़ देह मैं नहीं हूँ। यह कुछ भी मेरा नहीं है। ऐसा सोचते–सोचते किसी समय सत्चेतन स्वरूप का अनुभव होने लगता है।

2. अनुभूति होने पर साधना की आवश्यकता नहीं होती। साधना करते करते अनुभूति होती है।

3. तुम्हारा कहना है कि आपके निकट गुण ही उमड़ने चाहिए दोष नहीं। भगवान राम कृष्ण के दर्शन करने वालों में भी भीतर रहने वाले दोष उमड़े। श्रद्धा, उदारता, नम्रता, सरलता, मधुरता तो ऊपर से भी ओढ़ी जा सकती है। परन्तु भीतर के दोष यदि न प्रकट होंगे तब तक बाहर का श्रम व्यर्थ ही होगा। 'ज्ञान में देखो' पुस्तक में 38–39 पृष्ठ पढ़ो।

   तुम्हारे हृदय की प्रीति जिन दोषों से ढकी है उन्हें देखो।

4. **सुसंग का प्रभाव सब पर एक समान नहीं पड़ता।**
जिन जैसा सत्संग किया, तिन तैसा गुण लीन।
कदली सीप भुजंग मुख, एक बूँद गुण तीन।।

गन्दे कपड़े पहनकर समझदार कुलीन नारी किसी भद्र पुरूष के सामने नहीं जाती, इसी प्रकार तुम्हारा मन मष्तिष्क सही न हो तब किसी के सामने नहीं जाना चाहिए। सेवा, दान, सम्मान तत्काल करना चाहिए। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधावेग में 24 घण्टे ठहरना शुभ होता है।

प्रीति कबहुँ नहिं जोरिये, जोरि तोरिये नाहिं।
पुनि जोरे तोरे बहुरि गांठ परत मन माहि।।

श्रद्धा में पाप नाश होते हैं अश्रद्धा में यही पाप बन जाते हैं। अश्रद्धा हो जाए तब बार–बार श्रद्धा का परिचय देना भी दुर्बलता है। बहुत बुद्धिमानी, धन मान भोग के लिए तो ठीक है। श्रद्धा प्रेम में तो यह बहुत अड़चन डालती है। बुद्धि जब मौन हो जाती है तब श्रद्धा में समर्पण पूर्ण होता है।

चतुराई चेतना सभी चूल्हे में जावे।
बस मेरा मन एक प्रभु ईश चरणाश्रय पावे।।

आग लगे आचार–विचारों के उपचय में।
उस प्रभू का विश्वास सदा दृढ़ रहे हृदय में।।

(तिलक गीता)

पथिक

*****

परम हितैषी, सुखदाता श्रद्धालु, उदार दानी, प्रेम स्वरूप, ज्ञानस्वरूप निरन्तर शान्त, प्रसन्न रह सकने वाली चेतन स्वरूप आत्मा को नामरूप से स्मरण !

तुम्हारी अशान्ति को, दुखी दशा को देखकर करूणावश यही अभिलाषा रहती है कि किसी कारण अपने विवेक का आश्रय लेकर तुम निरन्तर शान्त प्रसन्न रहो, क्योंकि तुम्हें परमात्मा से शक्ति चेतना मिल रही है। जो ज्ञान तुम्हारे साथ है, जो प्रेम तुम्हें अपने आनन्द की छाया में सुखाभास करा रहा है। वह ज्ञान, प्रेम, शक्ति संसार में कोई दे ही नहीं सकता। तुम अपने प्रभु के महान दान को देखो उसी में संतुष्ट, प्रसन्न, शान्त रहो। प्रेम को बांटती रहो, चाहो नहीं। दूसरों को सुखी बनाये रहने के लिए मन को, वाणी को, प्रेम से मधुर ही बनाये रहो। अशान्त होने पर इस मंत्र का जाप कुशा के आसन पर बैठकर तीन माला जप प्रातः एवं सायं करना है। उत्तर की ओर मुख करके इस जप से तीन दिन में शोक अशान्ति हट जाती है।

ऊँ क्लीं श्रीं या देवी सर्वभूतेषु शान्ति रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्ये, नमस्तस्ये, नमस्तस्ये, नमो नमः क्लीं श्रीं ऊँ।।

तुम्हारा मन नहीं लगता जप में, तब तुम कुछ न करो जिस तरह मन से तुम जप करना चाहती हो पर वह नहीं पसन्द करता तब मन की कोई बात पूरी न करो, केवल दृष्टा बनो, मन के अनुसार कर्ता न बनो। बुद्धि को विवेकवती बनाओ, विवेक ही कल्याणकारी शक्ति है। विवेक से ही कर्म के परिणाम का ज्ञान होता है। तुम यही तय कर लो कि मुझे कुछ न चाहिए तब तुम्हें अशान्ति न होगी। जब तुम कुछ न चाहोगी तब तुम्हें अपना अपमान, अनादार प्रतीत न होगा।

भक्त का वचन है :

मेरी चाही करन की, यदि है तुम्हरी चाह।
तो अपनी चाही करो तुम, यही हमारी चाह।।

पथिक

*****

विनाशी नामरूपधारी परमात्मा को सब ओर से प्रणाम है।

आपकी श्रद्धा देह पर नहीं है परन्तु अज्ञानवश प्रीति देहमय बन रही है। श्रद्धा मनोमय दरिद्र अहंकार के प्रति भी नहीं है परन्तु अविवेकी बुद्धि अहंकार को ही देख रही है। आपकी श्रद्धा ज्ञान के प्रति है, परन्तु अज्ञान की परिधि को पार नहीं कर पा रही है। अब सावधान हो जाओ। जो बुद्धि विद्या हजारों लोगों को सुलभ नहीं है वह आपको सुलभ है, अब उसका सत्य के लिए ही उपयोग करो, भविष्य तुम्हारे द्वारा ही निर्मित होगा। मन तो अहंकार के आगे नहीं जायेगा वह यहीं अटकायेगा। आप श्रद्धा ज्ञान स्वरूप आत्मा में ही दृढ़ करो, वह सदा निर्विकार है, शुद्ध है, आनन्दमय है। देह का आश्रय लेना होगा लेकिन स्थूल देह का नहीं। आपके मन में जो देहमूर्ति विद्यमान है उसी के ध्यान से सत्य ज्ञानस्वरूप से सम्बन्ध दृढ़ करो। यह स्थूल देह विकारी है भीतर सब कुछ अपवित्र है परन्तु मानसिक मूर्ति में कोई विकार, दोष, दुर्गन्ध नहीं है। यह देह जला दी जायेगी, राख बन जायेगी पर तुम्हारे मन की मूर्ति कोई जला नहीं सकता। तुम्हीं हो उसे भले ही बिगाड़ लो या अधिकाधिक सुन्दर बना लो। आपको जो कुछ कहना हो जो कुछ रोना, गाना, सुनाना हो उसी मानसिक देह के सामने रक्खो, इसे बनाने दिखाने की जरूरत नहीं। तुम्हारे दुर्भाव, सद्भाव का उत्तर वहीं से मिलेगा। हमारे गुरूदेव को जब कोई अपने यहां ले जाना चाहता, तब यही कहते थे कि इस मिट्टी को, इस ठूठ को ले जाकर क्या होगा, इसका ध्यान करो, ध्यान में मिलो वहीं से सब कुछ होता है। आपका मन और सभी का मन तो स्थूल देह को ही चाहता है, परन्तु यह झूठा सम्बन्ध है। अश्रद्धा से बढ़े हुए पुण्य भी क्षीण हो जाते हैं। कहा भी है।

'अश्रद्धा परमं पापं, श्रद्धा पाप प्रमोचनी'।

तुममें जितनी भी मात्रा में सरलता, नम्रता, उदारता, सहिष्णुता निष्कामता और किसी के प्रति आत्मीयता, श्रद्धा, प्रीति बढ़ती जायेगी

उतनी ही मात्रा में दोष घटते जायेंगे। जिसके प्रति तुम्हारी श्रद्धा, आत्मीयता है, प्रीति है, उसी के साथ तुम्हारे भीतर गुणों का विकास, दोषों का नाश हो सकता है।

प्रेम की पूर्णता में दोषों का पूर्ण त्याग अनिवार्य है और दोषों के त्याग के लिए सेवा ही क्षेत्र है साथ ही दान की पूर्णता ही दोषों के त्याग में सहायक है। तुममें उदारता की, सेवा की, सहिष्णुता की कमी नहीं है। केवल अहंकार की कठोरता ही अभी गलनी है, पिघलनी है। जल जमकर बर्फ बनता है और बर्फ पिघलकर जल के रूप में परिणत होता है यही अहंकार का रूपान्तर होना है। सब कुछ ले लो किन्तु तुम्हारी सेवा का अधिकार रहे। प्यार रहे न रहे, पर प्रिय मुझ पर सेवा का भार रहे। यह उद्गार उसी प्रेम भरे तृप्त, संतुष्ट हृदय के हैं जो अपने ही प्रेम में तृप्त है, संतुष्ट है उसे न कुछ पाना है, न बचाना है। उसका प्रेम परम तृप्ति दाता प्रेमास्पद है।

माता पुत्र लक्ष्मण को समझाती है :

राग, द्वेष, ईर्ष्या मद मोहू। जनि इनके सपनेहू बस होहू।
सकल प्रकार विकार विहाई। मन वच कर्म करेहु सेवकाई।
सबसे सेवक धर्म कठोरा, जो सेवक साहिवहिं संकोची।
निजहित चहई तासु मति पोची।।

विन विंधे कलियाँ हो सकी हार क्या।
कर सका कोई सुखी हो प्यार क्या।
प्रेम की चाह में स्वयं ही खो गया।
प्रेम था जिससे वही खुद हो गया।

यह प्रेमी भक्त के उद्गार हैं।

तुम प्रसन्न रहो, सबको प्रसन्न रखो। दुःखी होना अपने प्रति अपराध है और दूसरों को दुःखी करना पाप है। बहुत बचती रहो पाप

एवं अपराध से। सांस के आने जाने को मन से देखती रहो अर्थात उसी आने–जाने में मन लगाये रहो। प्राप्त शक्ति परमात्मा की है उसी में समस्त गतियां हो रही हैं। सभी गतियों के पीछे परमात्मा की शक्ति का स्मरण करते हुए परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव करो।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी आत्मा को नाम रूप में स्मरण !

यदि तुम श्रद्धा,प्रेम,नम्रता,उदारता सेवा भाव से हृदय को भरे रहो तो सदा अनुकूलता रहेगी। अपना मन खराब न किया करो, कोई शिकायत को स्थान ही न दो। माना कि तुमसे किसी से बहुत प्रतिकूलता हो गई तुमने अनुमान कर लिया कि अमुक व्यक्ति मेरे प्रतिकूल है लेकिन वही व्यक्ति जब मिला तब बहुत अनुकूलता रही प्रत्यक्ष तुमने अनुकूलता का आनन्द देखा और फिर भी पहले की प्रतिकूलता की कल्पना से मन को खराब कर लिया।यह स्वर्ग का नर्क बना डाला। कोई तुम्हारा शत्रु भी रहा हो पर जब मित्र भाव दिखा तब पहले के प्रतिकूल भाव का चिन्तन मनन करना मूर्खता है, ऐसा न करो। हर दशा में प्रसन्न रहने का संकल्प किया तो उसी में दृढ़ रहो। अपने प्रेम में प्रसन्न रहो, तृप्त रहो, किसी से आशा न करो किसी से अपेक्षा न रक्खो। अपने प्रेम में, अपनी सेवा भावना में,अपने दान में तृप्त रहो। दूसरा तुम्हें कुछ दे न दे, तुम कुछ चाहो ही नहीं। आनन्द, शान्ति प्रेम तुम्हारे साथ ही है खूब बांटो, चाहो नहीं।

जिस पर लोभ, मोह, क्रोध विकार चढ़ जाते हैं वही शक्ति हीन होता जाता है। जो क्रोधादि विकारों में चढ़ जाता है वही शक्तिशाली होता है। एक ओर यह जीव जड़ शरीर से तन्मय है दूसरी ओर नित्य चेतन सत् परमात्मा से मिला हुआ है। देह का ही स्मरण अधिकतर

रहता है नित्य अविनाशी चेतन का स्मरण नहीं रहता। अभ्यास हो गया है। अभ्यास से ही अभ्यास बदल सकता है। सजग रह कर कोई भी गलत आदत बदली जा सकती है। यदि तुम सजग रह कर जो कुछ देह में, वाणी में,इन्द्रियों में क्रिया हो रही है उसको देखते रहने में तत्पर रहो तो जो भी गलत अभ्यास है, वह सही हो सकता है। सजगता की ही अपेक्षा है। जीवन का सुन्दर निर्माण मानव के संकल्प पर ही निर्भर है। तुम संकल्पवान हो। मनुष्य इच्छा की पूर्ति का संकल्प करता है। लेकिन इच्छाओं की निवृति का संकल्प नहीं करता। इच्छा की पूर्ति से क्षणिक सुख मिलता है शान्ति नहीं मिलती। शान्ति के लिए इच्छाओं की निवृति आवश्यक है। इच्छाएं उसी में नहीं रहती जिसका हृदय प्रेम से तृप्त हो रहा है। सच्चा प्रेमी अपने प्रेमास्पद की पूर्ति में ही सन्तुष्ट प्रसन्न रहता है। तुम्हारे हृदय में प्रेम की प्रधानता होनी चाहिए। प्रेम ही दानी उदार,निष्काम,सहिष्णु होता है।

पथिक

*****

प्रेममय प्रभु की श्रद्धालु आत्मा को स्मरण।

खोजो जन्म के प्रथम, मृत्यु के बाद,तुम्हारा क्या रूप नाम था। हजारों जन्मों के पहले,मृत्यु के पीछे तुम किस रूप में होते हो। जहाँ मन नहीं होता, जितनी देर नहीं रहता, उतने में ही परमात्मा प्रगट है।

ध्यान का अर्थ है अविचलित चेतना। मन का अर्थ है विचलित चेतना ।।

मौन का समय बढ़ाकर यदि सवा घंटा आँख बन्द कर बैठ सको, करो कुछ नहीं सिर्फ देखते रहना जो कुछ भी तन में, मन में, प्राण में हो रहा है। सवा घंटा नियम से आँख बन्द कर बैठ सको तो महीने में बहुत कुछ अनुभूति हो सकती है। चौबीस घंटे में एक घंटा सवा घंटा परमात्मा के लिये 23 घंटा अपने लिए काम करो। मन की बात न मान देखते रहना

है। मन की पूर्ति में मन मोटा ही बना रहता है । अभी शक्ति है, संकल्प पूर्ण करो। साधना की पूर्णता के लिए इच्छा पूर्ति करते–करते जीवन बीत जाता है, शक्ति क्षीर्ण हो जाती है। बाहर के छिद्र बन्द होने पर शक्ति ऊपर उठेगी, योग में पहुँचायेगी, मन की पूर्ति में तो छिद्र ही बढ़ते जायेंगे।

अपनी ओर से तो मैं बीच बीच में यथार्थ सत्य का ही संकेत करता हूँ तुम अंहकार वश मानो या न मानो। अब इस सत्य का अनादर न करो तो तुम सत्य हो, चेतन आत्मा हो। नाम रूप का अभिमानी अंहकार ही मनोमय होकर कर्ता भोक्ता बन रहा है। तुम नित्य निरन्तर ज्ञान स्वरूप हो, उसमें जो कुछ रख लिया उसी मय ज्ञान बन रहा है। सुख दुख मन का माना हुआ है। यदि तुम अपने ज्ञान स्वरूप में बुद्धि को बार–बार स्थिर करने लगो तब यही अभ्यास सरल हो जायेगा। अभी तुम अमुक नाम रूप में बन कर और किसी को अपना बना कर अपने ज्ञान को ढक लिया है। तुम ज्ञान में कुछ स्वीकार न करके देखो तो अभी नित्य मुक्त हो, तुम स्वयं सुख स्वरूप हो।

'चेतन अमल सहज सुखरासी' तुम्हारा स्वरूप है। परन्तु मोहासक्त बुद्धि द्वारा क्या क्या मान लिया है। यह बन्धन मान्यता का है। यदि तुम अपने ज्ञान स्वरूप को मुक्त अनुभव नहीं करो तब तुम्हें कोई मुक्ति न दिला सकेगा। तुम स्वयं अपने मित्र हो यदि मन के पीछे से बुद्धि हटा लो। गीता में यही संकेत है कि अपने बनो, संसार के सब सहारे झूठे हैं। लाख बार देह को मेरी–मेरी कहो यह देह तुम्हारी हो ही नहीं सकती। जनक जी के गुरू समझाते हैं, यह देह तुम नहीं हो, देह तुम्हारी हो नहीं सकती। **'नाहं देहो न में देहो वोधोहमिति निश्चयी'** तुम ज्ञान हो, मन ही सुख दुख मानता है, चित्त चिन्तन करता है। बुद्धि ने गलत निश्चय कर लिया है। तुम मन, चित्त से ऊपर बुद्धि को चेतन ज्ञान स्वरूप में बार बार स्थिर करो। ऐसा न किया तो अनेकों जन्मों की भाँति यह जन्म भी सुख दुख भोग के चक्कर में ही

समाप्त हो रहा है। भक्ति, मुक्ति, शान्ति तुम्हें न मैं दे सका न दूसरा कोई सन्त महात्मा दे पायेगा। समझ में न आये तो और भटक लो। अभी तक तो देखना चल ही रहा है। राग द्वेष के द्वन्द से छूटने का प्रयत्न करो। तुम्हें ही ज्ञान में देखना है। मैं कुछ दे नहीं रहा हूँ केवल दिखा रहा हूँ। ज्ञान में देखो, चेतन आत्मा में ही प्रेम स्थिर कर लो, फिर जप पूजा, पाठ की जरूरत नहीं। न समझ में आये तो और भटक कर देख लो।

पथिक

*****

ऊँ श्री परमात्मने नमः,

प्रभु के प्रेम का स्मरण करके तृप्त रहो, सन्तुष्ट रहो,प्रेम में ही अपने को तृप्त समझो,सदा देने की अभिलाषा बढ़ने दो, लेने की कामना ही छोड़ दो। प्रभु का प्रेम देने से कभी घटता ही नहीं और लेने से तृप्ति होती ही नहीं।

यह गुरूवाक्य मैंने कई बार दुहराये हैं कि मन में कल्पना करने की, अनुमान लगाने की और अविष्कार की महान शक्ति है। वही शक्तिमान मन निर्णय कर रहा है। किसी के मन की व्यथा दूसरा समझेगा भी तो क्या कर सकता है। अपना मन ही शत्रु है तो दूसरा कौन मित्र हो सकता है और मन मित्र हो तो दूसरा शत्रु क्या बिगाड़ सकता है। कामना वासना से मुक्त मन ही अपना मित्र है। कामी, क्रोधी, मोही, लोभी मन ही अपना शत्रु है। किसी सद्गुण को सद्विचार को व्यक्ति का गुण नहीं मानों। तुम स्वयं ही ज्ञान स्वरूप हो तुम शुद्ध चेतन प्रेम स्वरूप हो, अपने को देखो, पर आश्रय छोड़ दो।

अहंकार दरिद्र है, भिखारी है, अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है शिकायत प्रिय नहीं है। अभी यह अहंकार न तो सही स्वामी बन सका न ही सेवक। सेवकाई करने में कुशल होता तो भूल न होती। अहंकार

को तो मान प्यारा है। अभी मान का त्यागी भी नहीं हो सका दूसरों को त्याग का उपदेश देता है। प्रारब्ध वश मिली प्रतिकूल संगति से कर्म फल कट जाता है। अब नए पाप न होने दो। गीता में कहा है **संशयात्मा विनश्यति** संशय में न रहना चाहिये। संशय निवारण की मुझ पथिक में क्षमता नहीं है। रामायण में लिखा है–

हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश विधिहाथ।

अब भाग्यानुसार जो समय की हानि हुई तो उसमें किसी अन्य को दोषी न ठहराओ। भाग्यानुसार माता, पिता, पति, पुत्रादि का संग मिलता है।

विधि वश सुजन कुसंगति परहीं ।
फणि मणि सम निज गुण अनुसरहीं ।।

सन्त वचनों को भगवान की ओर से भगवान का संदेश ही मानना चाहिए। तुम कहीं नहीं भटको। तुम स्वयं सन्त महात्मा आज से ही अपने को समझो। तुम देह, इन्द्रिया मन का पक्ष न लो। अहं के आकारों के पीछे तुम शुद्ध निर्विकार चेतन आत्मा हो। अभी परमात्मा से युक्त हो, कभी भिन्न हो ही नहीं सकते। मैं भी शुद्ध चेतन निर्विकार आत्मा हूँ। मैं नित्य मुक्त हूँ लेकिन यह देह, यह मन, यह इन्द्रियां, यह अहंकार, सन्त महात्मा नहीं है। यही भ्रम निवारणार्थ सत्य वचन है, इन पर ध्यान दो। मैं विशुद्ध नित्य मुक्त, चेतन आत्मा, द्वन्दों से मुक्त शान्त आनन्द हूँ। यह देह जड़ है अहंकार मिथ्या है सारे विकार अंहकार में है यह अहंकार महामूढ़ है, अंहकार के पार स्वयं को पहिचानो तो महात्मा । तुम मूर्ति के भगवान की उपासना कर सकती हो परन्तु इस अंहकार की उपासना में तुम भगवान से विमुख रहोगी। भूल न करो महात्मा पद प्राप्त करो।

पथिक

*****

श्रद्धालु आत्मा को नामरूप में स्मरण।

की हुई भूल न दुहराने का दृढ़ निश्चय ही वास्तविक प्रायश्चित है। जितना ही साधक शान्त मौन रहेगा उतना ही शक्ति की गति अन्तर्मुखी होती जायेगी। विज्ञानमय कोष की जाग्रति होगी। यदि मेरी बात का आदर करती हो तो अंहकार की दरिद्रता से सजग रहो,केवल देखती रहो। कुछ भी न चाहो तभी दरिद्रता का अन्त होगा। जो स्वतः मिल जाये उसे पाकर प्रभु की दया का धन्यवाद दो। जब प्रतिकूल आये, मन की पूर्ति न हो तब प्रभु की कृपा का स्मरण करो। किसी को सुखदाता दुखदाता न मानो। अपने ही भीतर दुखदाता दोषों को देखो। सदैव प्रभु की ओर से जो भी आये उसे स्वीकार करो। प्रभु की महान कृपा से और इतने जीवन में तप के फल से तुम्हें सत्संगति का सुयोग सुलभ हो रहा है। भगवान ही जानते हैं कि जिस कामना की पूर्ति से तुम्हारा हित होगा उसकी पूर्ति के अवसर सुलभ होंगे और जिसकी निवृत्ति से तुम्हारा हित होगा उसकी निवृत्ति की शक्ति भी वही देंगे। तुम्हें केवल देखते रहना है कि कब क्या मिलता है और कब क्या छिनता है। सब स्वीकार करो। शिकायत करो ही नहीं, जब सब कुछ भगवान पर छोड़ दिया तब शिकायत की जगह ही कहाँ रही। चाहे स्वर्ग हो चाहे नर्क हो, सभी में उन्हीं को देखो। अधिकार की माँग तो करो ही नहीं। भगवान किसी को महाधनी बना दें तुम्हें निर्धन बना दें। किसी को अति सुन्दर तो तुम्हें कुरूप बना दें, किसी को प्यार दें तुम्हें बिल्कुल न दें। तुम हर दशा में प्रभु की मर्जी, प्रभु की प्रसन्नता की ही उपासिका बनो। केवल मांगना छोड़ दो, सन्तुष्ट रहने का व्रत ले लो। व्यास भगवान ने कहा है कि लोग लोभ एवं काम की अलंघ्य खाइयों को पार कर जाते हैं परन्तु क्रोध के आवेग के सामने धराशायी हो जाते हैं। तुम्हारा हित हो, शान्त प्रसन्न रहो, यही मेरी भावना है, प्रसन्नता है। दुखी हृदय से मैं डरता हूँ।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी श्रद्धालु आत्मा को नाम रूप में सद्भाव पूर्वक स्मरण ।

तुम्हारा शरीर अब कैसा है मन तो सभी का रोगी रहता है। ऊपर से सभी ठीक दिखते हैं परन्तु भीतर तो अनेकों रोग हैं। जिस प्रकार बाहर की सर्दी गर्मी के प्रभाव से भीतर विकार प्रकट हो जाते हैं उसी प्रकार संग एवं शब्द स्पर्श के प्रभाव से भीतर काम, क्रोध, मोह आदि विकार प्रकट हो जाते हैं और संग के प्रभाव से भीतर छिपे हुए श्रद्धा, उदारता, नम्रता आदि सद्गुण भी प्रकट हो जाते हैं। किसी कारण से मुरझाया मुख खिल उठता है और किसी कारण से खिला हुआ मुख मुरझा जाता है। एक शब्द से हंसी आ जाती है एक शब्द से आँसू छलक पड़ते हैं। उमड़ता वही है जो भीतर होता है, जो भीतर नहीं होता वह नहीं उमड़ता। गुणों की जागृति में तद्नुसार कर्म करने से गुणों की वृद्धि पुष्ट होती है। कर्म न करने से गुण सूख जाते हैं। इसी प्रकार दोष, दुर्गुणों के जाग्रत होने पर कर्म न बने तो कुछ दिन में दोष सूख जाते हैं। क्रोध आये तब बोले नहीं, प्रेम आये तब भोग नहीं, ऐसा करने से दोनों क्षीण हो जायँगे। क्रोध, ईर्ष्या, लोभ आदि विकारों के जाग्रत होने पर कर्म न करो, क्रिया न होने दें, तो विकार पोषण नहीं पाकर सूख जाता है। तुम्हारे भीतर प्रेम, दया, करूणा, उदारता, श्रद्धा आदि सभी सद्गुण हैं उनके अनुसार क्रिया होने पर सद्गुण बढ़ेंगे, क्रिया न होने पर सुप्त रहेंगे। दान क्रिया से उदारता को पोषण मिला, सेवा, सत्संगति क्रिया से श्रद्धा को पोषण मिलता है। बहुत सजग रहो, अपने हृदय को सदा प्रसन्न रहने दो, उदार रहने दो, विनम्र रहने दो। इसके विपरीत उदारता, नम्रता, प्रीति, क्षमाशीलता को धक्का देने वाले विकारों के आते ही उन्हें धक्का देकर बाहर कर दो। वाणी द्वारा प्रगट न होने दो, यही तुम्हारी वीरता है, धीरता है,गम्भीरता है, विशालता है। तुम्हारा प्रत्येक कर्म दूसरों के हित में हो और गुरूजनों के सुख हेतु हो। अपने मन की पूर्ति के सुख का पक्ष न लो। जीवन का निर्माण जिन

दिव्य सद्गुणों द्वारा, ज्ञान द्वारा, प्रेम द्वारा होगा, उसके लिए तुम्हारे पास बहुत समय है, शक्ति है,वह व्यर्थ नष्ट न होने दो। तुम अपने प्रभु की प्रसन्नता के लिए सत्त सावधान रहो, वे प्रभु ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, निन्दा, घृणा करने से प्रसन्न न होंगे ।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप में अविनाशी आत्मदेव को बार बार नमस्कार है ।

सन्त के वचन हैं :–

जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाय ।
सो कृत निन्दक मन्द मति, आत्म हनन गति जाय ।।
सो परत्र दुख पावई सिर धुनि धुनि पछिताय ।
कालहिं, कर्महि, ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय ।।

'कोउ न काहु सुख दुख कर दाता, निज कृत कर्म भोग सब पाता ।'

सत्संग की रूचि बढ़ने दो और जिज्ञासा की प्यास इतनी जागने दो कि सत्य परमात्मा को, आत्मा को अथवा स्वयं को जाने बिना चैन न लो, यही सच्ची जिज्ञासा है। तुमने लिखा है कि जाये तो कहाँ जायें– तुम्हें संसार का धन, सम्मान, मान सुखोपभोग चाहिये तो चलते ही रहना होगा। यात्रा का अन्त ही नहीं है और सत्य परमात्मा को चाहिये तब कहीं भी जाने की जरुरत नहीं है। अपने में ही बुद्धि को स्थिर करो। मन की न मानो, आत्मा, परमात्मा का अनुभव स्वयं में ठहरने से ही होता है आने जाने से नहीं । ऐसा सन्त सद्गुरु ने बताया है।

तुम सत्य को अथवा स्वयं को या इस संसार को समझने जानने के लिये सन्त के पास जाओ, वीतरागी ज्ञानी की खोज करो, जब तक न मिले तब तक नित्य प्रभु से प्रार्थना करो, यदि तुम्हारी सच्ची

जिज्ञासा होगी, तब प्रभु कृपा से अपने आप सद्गुरु मिलें या भीतर ही प्रभु ज्ञान रुप में जाग्रत होकर समाधान करेंगे। जब तक श्रद्धा सन्देह रहित न हो तब तक कहीं न बंधो। तुम असत्य वस्तु या व्यक्ति का सहारा न लो। किसी वस्तु या व्यक्ति के दोषों की छानबीन में अपना सुन्दर समय न बिताओ। अहंकार जड़ है मूढ़ है, समस्त बन्धनों का कारण है।

मोसम कौन कुटिल खल कामी।
जो तन दियो ताहि विसरायो, ऐसो नमक हरामी।

'अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ता हमिति मन्यते' और इस अहंकार के पीछे जो ज्ञान स्वरुप चेतन आत्मा है वह परम शुद्ध बोधस्वरुप, निर्विकार आनन्दमय अविनाशी है। परमात्मा ही आत्मा है आत्मा में ही बुद्धि के संयोग से अहं स्फुरित हुआ और मन के संयोग से आकार उत्पन्न हुये हैं। वही आकारमय अहंकार ही सत्यानन्द परमात्मा से विमुख होकर कर्ता भोक्ता बन रहा है। इस अहंकार का दृष्टा मैं नित्य निर्विकार, ज्ञान स्वरुप, चेतन, नित्य मुक्त, साक्षी आत्मा हूँ यही तुम भी हो।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप में अविनाशी परमात्मा को नमस्कार!

गो गोचर जह लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।
तेहिकर भेद सुनहु तुम सोई। विद्या अपर अविद्या दोई।।
एक दुष्ट अतिशय दुख रूपा। जा वश जीव पराभव कूपा।।
एक रचे जग गुण वश जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।।

तुम्हारी सरलता, नम्रता, उदारता, निष्कामता, प्रीति बहुत ही सुखद पुण्यमयी है। जीवाणु के भीतर चेतना प्रकृति के जड़त्व को तोड़ती हुई पूर्ण से मिल कर पूर्ण होने के लिए निरन्तर गतिमान है।

इस गति विधान को ज्ञान में देखने वाले ही जानते हैं। जब स्पष्ट दिव्यता का अवतरण दर्शित होगा तब तुम्हारा हृदय पूर्णतः इस निष्काम प्रेम से अपने आप में तृप्त होगा। तुम्हारी समीपता में जो कोई आयेगा वह भी शान्ति तृप्ति का अनुभव करेगा। तुम्हारे हृदय में अनपेक्षित आनन्द भरपूर होगा तभी आत्मतृप्ति, आत्मतुष्टि, आत्मा में ही प्रीति दृढ़ होगी। तब शक्ति, सम्पत्ति सेवा के लिये एवं ज्ञान बन्धनों से, दोषों से, मुक्ति के लिये और प्रेम केवल प्रभु के लिये घटित होगा। जब तक अहंकार अपनी तृप्ति तुष्टि का कामी है तभी तक क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष में शक्ति का दुरूपयोग होता है। यही पशु प्रवृत्तियाँ हैं इनके दमन शमन से दिव्यता का अवतरण होता है, क्रोध ही क्षमा में परिणित होगा। द्वेष ईर्ष्या भी प्रेम में बदलेगी। यदि तुम अभिमान छोड़कर प्रेम की शरण ले लो तो कामना के बादल छट जाँयेंगे। केवल कामना इच्छापूर्ति का पक्ष न लो। सम्बन्धित जनों की पूर्ति का पक्ष लेकर सेवाव्रती हो जाओ। उन्हीं की सुविधा में सुख पहुँचाने में अपनी धन्यता मानो। अहंकार की दरिद्रता एवं भिखारी वृत्ति से सावधान रहो। तुम यहाँ आकर सेवा कर सको तो तुम्हारा भाग्य बहुत ही सुन्दर होगा। यदि किसी शरीर से अपनी अनुकूलता चाहोगी तो भिखारी भीख मांगने वाले संसार में कोई तृप्त नही हो सके। भिखारी से भींख न मांगो। परमदाता परमात्मा के दान को ध्यान से देखो और प्राप्त में ही सन्तुष्ट रहो, अप्राप्त की कामना त्याग दो।

यदि प्राप्त शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता तथा प्रेम से दूसरों की सेवा करने में सजग रहो तो अप्राप्त की प्राप्ति स्वतः हो जायेगी सही व्यक्ति कभी नहीं मांगते। जो मांगते हैं, चाहते हैं वह भिखारी गलत हैं सही नहीं हैं। वही चोर डाकू बनकर कामना पूर्ति का पक्ष लेते हैं। सही वही हैं जिसे बिना मांगे जो मिलता है उतने में ही तृप्त रहता है।

पथिक

*****

प्रेममय प्रभु की श्रद्धालु आत्मा को स्मरण।

एक सन्त ने बताया था कि एकान्त में उसी की याद आती है जिससे कुछ लेना है या देना बाकी है। अवश्य ही अहंकार जब दुखी होता है तो किसी न किसी कामना को लेकर ही दुखी होता है। यह भी पढ़ा सुना है कि कामनाओं की पूर्ति कभी किसी की किसी के द्वारा हो ही नहीं सकती। कामनाओं के त्याग से तथा सुख स्पृहा छोड़ देने से साथ ही अपना कुछ भी न मानकर ममता रहित और अहं को आकारों से रहित करते ही शान्ति सुलभ होती है यह भगवान का निर्णय है।

अहंकार जहाँ भिखारी और दरिद्र होता है वहीं वह दानी और त्यागी भी होता है। अविद्या में अहंकार को पुष्ट करते रहना पाप है। अहं के आकार ही बादलों की तरह आत्मा की अनुभूति कराने वाली ज्ञान दृष्टि के आगे छाये रहते हैं इसीलिये निरन्तर प्रकाशित आत्मारूपी सूर्य को अज्ञानी अहंकार नहीं देख पाता। आकार न रहने पर दर्शन सम्भव है। अहंकार ही सदा सुखी, स्वतन्त्र, स्वाधीन, शान्त रहने के लिये अथक प्रयत्न करता है, बड़ी अक्ल लगाता है, कहाँ कहाँ जाने का संकल्प करता है, दुखों से मुक्त होने के लिये सुन्दर सफलता के मानसिक चित्र बनाता है और कभी कभी शक्ति समय सम्पत्ति को व्यर्थ नष्ट करके वैसा ही लौट आता है जैसा गया था। अहंकार बाहर के सम्बन्धित जनों के संग का त्याग तथा कार्यक्षेत्र का त्याग एवं ग्राम नगर, गृह परिवार का त्याग करके शान्ति की कल्पना करके सुदूर देश में जाना चाहता है परन्तु भीतर से दुखदाई मोह, मत्सर, मद, ममता, मूढ़ता, दुराग्रह, असत्याग्रह एवं अभिमान के त्याग को सोचता भी नहीं। तुम्हारा ही नहीं सभी में अहंकार की इसी प्रकार की कृतियाँ मूढ़ता वश भोगी बनाये रहती हैं।

तुम सावधान रहकर मोही मूढ़ मन के संकल्पों की पूर्ति का प्रयत्न न करो। स्वतः पूरा हो तो दृष्टा होकर देखने के लिये

सावधान रहो। जिससे तुम्हारा लेना देना है, यथा शक्ति उसकी पूर्ति कर दो, उसके बदले में कुछ न चाहो और सोच लो कि मुक्ति मिल रही है। तुम वही बोलो जो दूसरों के लिए हित प्रद हो, सुख प्रद हो। उसी से बोलो जो सुनने के लिये तत्पर है। उसी से मिलो जो तुमसे मिलकर प्रसन्न होता है। उसी के यहाँ जाओ जो तुम्हारी उपस्थिति चाहता है। वही सुनो जिससे तुम्हारे मन का मोह मिटता है। तुम्हारे द्वारा वही दान हो जो दूसरों की आवश्यकता पूर्ति करता हो। वही पढ़ो जो अज्ञान को हटाता हो। बार–बार मनन करो–

मैं परमात्मा की शक्ति हूँ। मैं परमात्मा का शुद्ध ज्ञान हूँ। मैं परमात्मा का आनन्दमय प्रेम हूँ। अहंकार में उतर कर यह शक्ति, यह ज्ञान एवं प्रेम सीमित सुखोपभोग का साधन बन रहा है। अब संसार की ओर न भागो। कहीं भागने से दुख, अशान्ति न मिटेगी। स्वयं में ठहरो। प्रतिकूलताओं को सहकर देखो। तप करो, किसी व्यक्ति वस्तु या तीर्थ के सहारे क्षणिक सुख भले ही प्रतीत हो परन्तु अशान्ति का, दुखों का, अन्त न होगा। अभी तक न देखा हो तो और भटक कर, खोकर देख लो, लेकिन देखने की दृष्टि खुली होनी चाहिये। यही तप है।

पथिक

*****

विनाशी प्रिय नाम रूप में प्रकाशित आत्मदेव को नमस्कार!

यह गुरु सम्मति है कि अपनी रुचि के प्रतिकूल जो कुछ भी हो उसे प्रभु के विधान से हितकारी जानकार स्वीकार करते जाओ। अपने भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह जो भी विकार प्रबल हों उसके पीछे आत्मदेव की शक्ति को नमस्कार करो। आत्मदेव ही अहंकार को गलाने के लिए दुख के रूप में कृपा करते हैं। यहाँ पर एक अपने गुरू की अनन्य श्रद्धालु देवी हैं। सब प्रकार से सुखी सम्पन्न साधन युक्त

होने पर भी विवाह नहीं किया। कुछ दिन पूर्व गुरूदेव का शरीर नहीं रहा उनके वियोग में बहुत दिन व्याकुलता पूर्वक रोते रोते बिताये। अब रोना तो बन्द है लेकिन रात दिन यही प्रतीक्षा है कि गुरूदेव के प्रत्यक्ष दर्शन हों। विज्ञानमय कोश में जब तक चेतना जाग्रत नहीं होती तब तक मनोमय कोश में जाग्रत अहंकार में इसी प्रकार के संकल्प उठते हैं। उसे पता नहीं कि यदि उसका प्रेम वैवाहिक जीवन में बिखर जाता तो उस प्रकार के दर्शन का दृढ़संकल्प अथवा हटाग्रह न होता। चेतना नीचे उतरकर जब तक तमोगुण, रजोगुणी, सतोगुण से लिपटी रहती है तब तक तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी संकल्पों की पूर्ति के लिये समग्र शक्ति का उपयोग होता है और तुममें तमोगुणी से सम्बन्धित रजोगुणी संकल्प उठते हैं। रजोगुण के साथ जब तमोगुणी अंश मिला रहता है तब संकल्प की पूर्ति की प्रतिकूलता में ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध में शक्ति नष्ट होती रहती है और सतोगुणी संकल्प में जब रजोगुण मिश्रित रहता है तब सेवा, दान, दर्शन की प्रबल प्यास, प्रतीक्षा, अधीरता, व्याकुलता, करूणा, रूंदन आदि वृत्तियों की प्रधानता रहती है, लेकिन ज्ञान में दर्शन की दृष्टि नहीं खुली है। मनुष्य में जो ऊर्जा शक्ति होती है वह तमोगुणी, रजोगुणी, सतोगुणी वृत्तियों के द्वारा अपना मार्ग खोज लेती है। मैंने कुछ बालकों को देखा कि शान्त रह नहीं सकते, क्षण–क्षण उछलने कूदने की वृत्ति रहती है यदि उनकी वृत्तियों को रोका जाय तो क्रोध और रूदन में परिणत हो जाती है। इसका दर्शन तभी होता है जब विज्ञानमय कोश में मनोवृत्तियों को देखने की क्षमता आ जाती है। तुम्हारे जीवन में जो कुछ घटित हो रहा है वह प्राकृतिक विधान से सभी कुछ हितकर है। यदि पुण्य से सुलभ सत्संग का आदर करो तो शीघ्रता से शक्ति की अद्योमुखी गति ऊर्ध्वमुखी हो सकती है। इसके लिए बड़ी सुगम साधना है कि शक्ति के चारों द्वारों से प्रवाह को रोक लिया जाय। **1. प्रिय दर्शन की कामना, 2. जो अति प्रिय हो उससे मिलने की कामना,**

3. अहंकार को प्रिय लगने वाले प्रिय शब्दों को सुनने की कामना, 4. भ्रमण की कामना। इनसे शक्ति रोक ली जाय तो हृदय में पवित्र भावों का विकास होता है। यदि भाव रस का भी योग न किया जाय तब विज्ञानमय कोश में चेतना उठ जाती है वहाँ से अपने भीतर आनन्द की झलक मिलती है। कार्य बहुत थोड़ा है लेकिन लाभ सर्वोपरि है। गंगा के प्रवाह को रोक लिया जाय तभी नहर बन सकी है।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप में अविनाशी आत्मदेव को नमस्कार!

सन्त वाक्य बहुत ही सावधान करते हैं

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी।
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा।।

सन्तों के उपदेश निर्देश तो ऊसर में बीज बोने के समान व्यर्थ हो जाते हैं। जिसके ऊपर भूत सवार है अर्थात बीती हुई प्रतिकूलताओं का ही मनन चलता है उसके लिए वर्तमान के कर्तव्य की चर्चा व्यर्थ है। सन्त कहते हैं कि भूत से अपने को मुक्त करो, वर्तमान को देखो इसी वाक्य से अशान्ति हटती है, प्रसन्नता होती है। मनुष्य में सारी वृत्तियां अनेकों जन्मों के पशु देहों का संस्कार है। वृत्ति पशुओं की है विचार मन व जीवन का परिचय है। विवेक दिव्य जीवन की जाग्रति है। गुरू कृपा से मानवता में दिव्यता का अवतरण होता है।

पशु में मानवता लाते तुम, मानव को देव बनाते तुम।
वह योग विधान सिखाते तुम, जिससे पापों का क्षय होवे।।
भगवान तुम्हारी जय होवे।।

प्रतिकूलता में ही अपने असाधु और साधु वृत्तियों का परिचय मिलता है। प्रत्येक संग दर्पण का काम करता है। अपने भीतर की कुरूपता या सौन्दर्य को दिखा देता है। इसीलिये संग का दोष वहीं तक पड़ता है जहाँ तक अपने में दोष छिपे होते हैं। दूसरों को दोषी ठहराना अविचार की सीमा में ही है। इसीलिये मैं अपने हित के लिये सभी प्रकार के संग को स्वीकार कर लेता हूँ। भविष्य की भगवान जाने, जो कुछ होगा देखते जाना है। तुममें भगवान के कई सद्‌गुण बहुत सुन्दर सुखद है उन्हीं के द्वारा दोष मिटेंगे। तुम्हारा जीवन दिव्य होगा, सुन्दर होगा, यह तुम्हारे ही शुभ संकल्प पर निर्भर है।

किसी की भूल को, अपराध को, क्षमा करने का अभ्यास दृढ़ करो। शान्त और मौन रहकर स्वस्थ्य रह सकती हो। क्रोध तो किसी को प्रिय नहीं होता। श्रद्धा के साथ अश्रद्धा, प्रेम के साथ द्वेष, क्षमा के बिना दृढ़ क्रोध, विनम्रता के ऊपर कठोरता आदि दैवी शक्ति अथवा वृत्तियों पर आसुरी शक्तियों का आक्रमण है। इसी को देवासुर संग्राम कहते है। जो सभी के भीतर चलता ही रहता है।

पथिक

*****

ज्ञान स्वरूप आत्मा को विनाशी नाम रूप में स्मरण।

प्रभु की दया से अनुकूलता का सुख मिलता है और कृपा से प्रतिकूल की वेदना रागाशक्ति से मुक्त बना देती है।

तुम्हारा बहुत बड़ा पुण्योदय है अब तुम सभी से निराश होकर सर्वाश्रयों का त्याग कर दो। सर्वाश्रय छोड़ने पर परमाश्रय उपलब्ध होता है। मुझसे या किसी से कुछ पाने की आशा में, समाधान की प्रतीक्षा में, समय व्यर्थ न करके जहाँ से प्रश्न उठता है वहीं शान्त होकर उत्तर की प्रतीक्षा करो। अब प्रयत्न में न पड़ो। श्रद्धा के द्वारा शरीर के दर्शन का महत्व न देकर ज्ञान में अपने को देखो और जो मैं

बोलता हूँ वह सब पुस्तकों में पढ़ लो। अब प्रश्न भी छोड़ दो, सत्संग के लिये असत संग का सहारा न लो। तुम्हीं नित्य सत्य हो, अपना ही संग करो, सब प्रश्न हटा दो, किसी की मनः स्थिति का चिन्तन न करो। किसी जैसा तुम्हें नहीं बनना है। हर एक जीवात्मा अद्वितीय है तुम अद्वितीय हो, तुम्हें किसी के समान नहीं होना है, वह नकल होगी। मुझसे कोई आशा न रक्खो, तुम्हारे हृदय में ही वह महान शक्ति है जिससे तुम्हें समाधान मिलेगा। अकल्याण की, पाप की कल्पना भी न करो। असंग होकर तुम नित्य कल्याण स्वरूप हो। तुम्हारे हृदय में ऐसी कोई सांसारिक कामना भी नहीं है, याचना नहीं है, दरिद्रता भी नहीं है। अपने में ही शान्त मौन होकर सत्संग करो। असत अनित्य संग से बचो। बाहर अनित्य का ही संग है।

पथिक

*****

हृदयस्थ प्रभु को नाम रूप में अपने भावनानुसार स्मरण करते हुये आनन्दित हूँ।

अन्तःकरण जैसे–जैसे जप, सुमिरन, प्रभु के गुण, चिन्तन से पवित्र होता जाता है वैसे ही वैसे पशुता का दमन, राक्षसी, दानवी वृत्तियों का दमन होता जाता है। मानवता विकसित होती जाती है और दिव्यता बढ़ती जाती है। जब अपनी कोई चाह नहीं रहती, तब कोई भी वस्तु अपनी नहीं प्रतीत होती, सब कुछ प्रभु से मिली हुई और प्रभु की ही दीखती है। जब कर्तव्य परायण रहना स्वभाव बन जाता है जब दूसरे के अधिकार की रक्षा में ही सुख दीखता है। जब अपना अधिकार कहीं दीखता ही नहीं है। जब लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधदि सारे दोष मिट जाते हैं। जब प्रभु के नाते सभी के प्रति हृदय स्नेह से भरा रहता है। जब ममता आसक्ति समाप्त हो जाती है। तब मानवता

की पूर्णता में दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है। प्रभु प्रेम में तृप्त रहो, सन्तुष्ट रहो, मन की पूर्ति का पक्ष न लो। प्रभु की मर्जी में प्रसन्न रहो।

तुम्हारे हृदय में परमात्मा का प्रेम तथा ज्ञान परम पवित्र आनन्दमय है। परन्तु जो कुछ ऊपर परम है वही नीचे उतरते उतरते पतित कहा जाता है। जो पतित है वही ऊपर उठते ही पवित्र दीखता है। तुम्हारी बुद्धि जब मन के पीछे चलने लगती है तब वह नष्ट हो जाती है। जब ज्ञान में देखती है तब बहुत शुद्ध हो जाती है। तुम मन को सूखने दो, मन की मानोगे तो बहुत देर लगेगी। मन तो कामनाओं से कसा रहता है। मन अपनी पूर्ति के लिए हिंसक है, भोगी है। मन की पूर्ति के पीछे इतने पाप, अपराध बनते हैं कि उसके फल भोगने से वियोग का दुख भोगना पड़ता है। पुत्र वियोग, पति वियोग, पत्नि वियोग अर्थात प्रिय वियोग का दुखःभोग हिंसा का परिणाम है। जो अपनी रूचि पूर्ति के कारण दूसरों को दुख देता है वही वियोग का दुख भोगता है। जो अपने प्रिय को सुख देता है वही प्रिय संयोग का सुख भोगता है। यदि तुम अनुकूलता के सुख का पक्ष लेकर दुख सहिष्णु हो जाओ, तब इस तप से तुम्हारा भोगी चित्त विरक्त हो जायेगा, तब तुम्हें योग आनन्द सुलभ होगा। संयोग के सुख क्षणिक हैं। योग का आनन्द नित्य है। संयोग भिन्न का होता है और योग आत्मा परमात्मा की अनुभूति का होता है। तुम प्रभु कृपा पर निर्भर रहो, जो अनायास मिले, जितना मिले, उतने में ही सन्तोष करो, तृप्त रहो, तब कृपा से ही योग की अधिकारिणी हो जाओगी।

पथिक

*****

श्रद्धालु आत्मन!

तुम्हारे परम सौभाग्य में दुर्भाग्य का आक्रमण होता रहता है परन्तु अभी तक विजय नहीं मिलती। दैवी वृत्तियों को आसुरी वृत्तियाँ खा जाना चाहती है। श्रद्धा को अश्रद्धा नष्ट करना चाहती है। प्रेम को द्वेष वृत्ति हड़प कर जाना चाहती है, क्रोध तो जला ही देना चाहता है परन्तु अभी तक सभी आक्रमण व्यर्थ जा रहे है। अपने में ही प्रीति एकत्रित करना तुम्हीं अपनी मित्र हो और शत्रु भी। अहंकार की कठोरता, दरिद्रता एवं कर्कशता भी तुम्हारे परमात्मा की योगानुभूति में तथा पुण्य वृद्धि में बाधक है और पाप वृद्धि में सहायक है। तुम्हें अपने भीतर ही इस अहंकार के आक्रमणों से सावधान रहकर युद्ध करना होगा। तुम्हारे भीतर ही तुम्हें अशान्त करने वाले दुखदाता शत्रु हैं। तुम अपने साथ अहंकार की सीमा में होने वाली पाप प्रवृत्तियों से जितनी ही सावधान रहोगी उतना पाप से बचकर पुण्य वृद्धि कर सकोगी। जो शक्ति समय पाप में नष्ट होती है वही पुण्य वृद्धि में सहयोगी हो सकती है। तुमने कहा कि श्रद्धास्पद ही तुम्हें विकार रहित कर सकता है परन्तु मैं तुम्हें याद दिलाता हूँ कि तुम्हारा प्रेम ही अथवा तुम्हारी अटूट श्रद्धा ही श्रद्धास्पद से सब दोषों का नाश करा सकती है। भगवान राम, कृष्ण भी अहंकारी, मोही, द्रोही को नहीं बदल पाये। शक्ति के द्वारा शत्रु पराजित किया लेकिन अपने दिव्य ज्ञान द्वारा दुर्योधन, शिशुपाल, कंस, रावण आदि का अज्ञान नहीं मिटा सके, क्योंकि ऐसा सत्य विधान नहीं है। तब मैं तुम्हारे भीतर के दोषों में अहंकार की कठोरता एवं ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों को कैसे मिटा सकता हूँ। प्रेम में ही सारे दोष दूर हो सकते हैं। मुझ में श्रद्धा प्रेम अटूट है तो तुम आज्ञा पालन में समर्थ हो सकोगी। यदि अहंकार की सुरक्षा चाहती हो, तब तुम अहंकार से प्रेम करती हो, गुरू तत्व से नहीं। व्याख्यान उपदेश किसी को त्यागी, दानी, निर्दोष नहीं बना पाते। श्रद्धा प्रेम के सहारे ही साधक त्यागी, दानी, उदार हो सकता है। प्रेम के विरूद्ध अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध को

न ओढ़ो। क्रोध में जब मुख खुलता है तो देखने वाली आँखें बन्द हो जाती हैं। अंहकार रूपी मेघों से प्रेम रूपी सूर्य ढक जाता है अर्थात आंख ही ढक जाती है।

तुम्हारे भीतर अपने भीतर दुख देने वाले दोषों का दुख है, यह बहुत ही शुभ है। बार बार जो दोहराया जाता है उसी का अभ्यास हो जाता है। उसके विपरीत जब गुण दोहराया जाता है तब गुण का अभ्यास हो जाता है। संग से ही गुणों का और दोषों का अभ्यास होता है। तुम भगवान की कृपा से श्रद्धा के द्वारा जो ज्ञान का आदर कर रही हो इसी के द्वारा दोषों के स्थान में गुण पुष्ट होंगे। जिस प्रकार रूप का अभिमानी कुरूपता से सावधान रहता है। उसी प्रकार गुणों का प्रेमी सर्वत्र गुणों का ही पक्ष लेता है। तुम बहुत डरो कि कठोर वचन, कर्कश वाक्य बोलने की आदत छूट जाए। कुछ दिन श्रम करना होगा। अनेक शरीरों को देखते हुये देहों में एक चेतन स्वरूप आत्मा का मन ही मन चिन्तन करो, जिस प्रकार अपने प्रिय स्नेही के प्रति, अपने श्रद्धेय के प्रति कोई प्रेम से ही भरा रहता है उसी प्रकार तुम सभी आत्माओं के प्रति स्नेह करूणा से भरे हृदय द्वारा व्यवहार करो। जैसे लोभी को धन लाभ की चिन्ता रहती है, हानि का भय रहता है। उसी प्रकार तुम सद्गुणों की वृद्धि का गुणों की हानि का भय बनाए रक्खो। सात दिन किसी से प्रेम पूर्वक बर्ताव करने और किसी दिन एक कटु, कठोर, कर्कश शब्द का प्रयोग कर दो, तो क्या दशा होती है। तुम्हारे मन में मधुर वाक्य भी भर जायेंगे और एक कटु वाक्य उसी प्रकार खटकता रहेगा जिस प्रकार फूलों के हार में कांटा चुभता रहता है। जीवन की कुरूपता अपने ही अज्ञान में बढ़ती है और जीवन का सौन्दर्य भी अपने ही द्वारा निर्मित होता है। यह बहुत शुभ लक्षण है कि तुम्हें अपनी भूल का पश्चाताप होता है। दुखी होने पर भी तुम दूसरों को दुख न दो।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप मय परमात्मा को सब ओर से प्रणाम।

जब तक मन की पूर्ति का पक्ष है तब तक सेवा, प्रेम एवं त्याग की पूर्णता हो ही नहीं सकती। मन की अनुकूलता में सुख की प्रतीति होती है और प्रतिकूलता में दुख की प्रतीति होती है। कामना की अपूर्ति में दुख और कामना की पूर्ति में क्षण क्षण सरकता हुआ सुख। लेकिन ज्ञान से देखने में जब कामना का त्याग हो जाता है तब है शाश्वत शान्ति।

शरीर में गुदा से लेकर शिर तक नौ चक्र हैं। मूलाधार चक्र में काम वासना प्रबल रहती है इसके संयम से ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है। इसके ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र में भावों की प्रबलता रहती है और इसी में भय, क्रोध, हिंसा, ईर्ष्या, द्वेषादि विकारों में शक्ति क्षीण होती रहती है। इस चक्र के संयम से अभय, प्रीति, क्षमा, अहिंसा भाव प्रबल होते हैं। मणिपूरक नाभि चक्र में शक्ति संयमित होने पर सन्देह, विचार, श्रद्धा विवेक जाग्रत होता है। इसी प्रकार हृदय चक्र की जाग्रति से भक्ति भाव प्रबल होता है। प्रत्येक चक्र की आंशिक जाग्रति से पूर्ण सद्गुण नहीं बढ़ते, गुणों के बीच में दोष चलते रहते हैं । हर साधक के जीवन में जैसे जैसे ऊँचे चक्र जाग्रत होते जाते हैं, वैसे वैसे उसके व्यवहार में सद्गुणों का ही परिचय मिलता है, दोषों की प्रबलता नहीं रह जाती।

मैं अपने सम्पर्क में आने वाले सैकड़ों श्रद्धालुजनों का निरीक्षण करते हुए देख रहा हूँ कि सभी साधकों में पशु प्रवृत्तियों की अधिकता से दैवी वृत्तियों का विकास बहुत धीरे धीरे हो रहा है। सैकड़ों श्रद्धालुओं में दो तीन श्रद्धालु प्रेमी ऐसे दीख रहे हैं जिनके जीवन में ऊँचे चक्रों की जाग्रति के कारण ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध में शक्ति का दुरूपयोग होता ही नहीं। जिसका हृदय प्रेम से आप्लावित है वह दूसरे के दोष सुनकर करूणित हो जाता है, अपनी कमी देख कर सुनकर आंखों में आंसू बहने लगते हैं।

बिनु गुण यौवन, रूप, धन बिनु स्वारथ हित जानि।

शुद्ध कामना ते रहित प्रेम यही पहिचानि।।
एक अंगी बिनु कारनहिं एक रस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान।।
छिनहि चढ़े छिने उतरे सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिन्जर बसे, प्रेम कहावे सोय।।

साधक के जीवन में जब चेतना नीचे के चक्रों से उठकर ऊपर के चक्रों में पहुँच जाती है, तब प्रीति में निष्कामता, निर्भयता, सरलता, सहिष्णुता, नम्रता, उदारता आदि दिव्य गुण जाग्रत रहते हैं। तब ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष, कलह, निन्दा, घृणा आदि दुष्प्रवृत्तियों के लिये स्थान ही नहीं मिलता। दुख रूपी आग में जब दोष रूपी ईंधन जल जाता है तब आग बुझ जाने पर दिव्य प्रेम की शीतलता से हृदय शीतल हो पाता है।

अशान्ति से बचने के लिये जहाँ तक हो सके अपनी रूचि पूर्ति के सुख का पक्ष न लेकर जिनको तुमने अधिकार दिया है उनकी सेवा में शक्ति समय का उपयोग करती रहो। अपने सुख की इच्छा जितनी प्रबल होती है उतना ही अधिक सुख इच्छा पूर्ति से प्रतीत होता है लेकिन ठहरता नहीं है। और पूर्ति होने से उतना ही अधिक दुख भी होता है। कितना ही किसी के मन की पूर्ति की जाय उसकी तृप्ति पूर्ण नहीं होती, अन्त में अशांति ही हाथ लगती है। इसीलिए अधिक मेल मिलाप, अधिक व्यवहार का विस्तार भी अशांतिदायक है। तुम्हारे भीतर अपनी कामना कोई प्रबल नहीं है और अधिक कोई इच्छाएँ भी नहीं हैं, यह बहुत शुभ है। यह कई बार सुन चुकी हो कि इच्छाएं मनुष्य को दरिद्र दुखी बनाती है। तुम अधिक इच्छाओं को न बढ़ने देना, अधिक सम्बन्ध भी न बढ़ाना, अपने भीतर ही शान्त, मौन रहकर आनन्द की प्रतीक्षा करना। किसी से कोई आशा न रखना। जो अपने आप मिले उसी में सन्तोष रखना, जो न मिले उसकी इच्छा न करना। किसी की

ऋणी न रहना। तुम्हारी श्रद्धा, उदारता, सेवा भावना व निष्कामता से बहुत ही सन्तोष होता है।

पथिक

*****

सर्वरूपमयी देवी सर्वदेवी मयंजगतो विश्वरूपां नमामि परमेश्वरीम्!

यह सन्त वचन हैं –

1. मनुष्य के विचार ही उसके लिये स्वर्ग नर्क का निर्माण करते हैं।
2. अतीत की स्मृति एवं भविष्य का चिन्तन वर्तमान के सदुपयोग में बाधक बनता है।
3. अहंकार से बढ़कर संसार में कोई दूसरा दुखदाता नहीं है।
4. मन ही स्वर्ग को नर्क और नर्क को स्वर्ग बना देता है।
5. अपने चुनाव के अनुसार मनुष्य प्राप्त का सदुपयोग और दुरुपयोग करता है।
6. धन, मान, भोग के पीछे संसार में कौन पागल नहीं है।
7. महत्वाकांक्षा का ज्वर, सम्मान की प्यास, मानव को सन्तापित करती रहती है।
8. जो अपनी प्रसन्नता दूसरों के अनुकूल वाक्यों पर निर्भर कर रहा है वह पराधीन शान्त नहीं रह सकता।
9. अहंकार की खुराक समीपवर्तीजनों के आदर सम्मान से पूर्ण होती है यदि वह नहीं मिलता तब अहंकार अति क्षुभित अशान्त हो जाता है।

10. दूसरों से अनुकूलता चाहने वाला सदा संशकित भयातुर रहता है।

11. प्रिय भाषण पुनि नम्रता, आदर प्रीति विचार।
लज्जा, क्षमा, अयाचना, यह भूषण उर धार।।

पथिक

*****

सर्वनाम रूपधारी परम प्रियतम परमात्मा को प्रणाम

इच्छापूर्ति के सुख से मन कभी तृप्त नहीं हो सकता है। स्थान परिवर्तन में तृप्ति की, शान्ति की, कल्पना ही होती हैं किसी वस्तु, व्यक्ति के संयोग से क्षणिक सुख की प्रतीत होती है स्थान बदल जाता है पर मन वही रहता है। अनिश्चित मन लिये हुये इस जगत में कुछ भी निश्चित नहीं हो सकता है। कोई निर्णय या किसी प्रकार की बातें निश्चित नहीं हो सकती, चित्त निश्चित हो सकता है। सिद्धान्त निश्चित नहीं होते, चेतना निश्चित होती है। जब तक चित्त उलझा रहता है तब तक कोई बात निश्चित नहीं होती। उलझा हुआ चित्त वही निकाल लेता है जो उसके भीतर की अवस्था होती है।

क्रमशः बना हुआ अहंकार जैसे जैसे टूटता जाता है वैसे वैसे अहंकार का विस्तार क्षीण होता जाता है। हृदय जितना प्रेम से भरता जाता है उतनी ही अहंकार में सरलता, नम्रता, उदारता प्रगट होती है। अहंकार ही कर्ता बनता है। कर्ता रहने तक पाप का अन्त नहीं होता। कर्तापने की समाप्ति में ही निष्पाप जीवन उपलब्ध होता है। कर्म नहीं बांधता कर्ता बांधता है।

नेत्रों से जितनी भी वस्तु दीखती है सब मिट्टी ही है, वही सर्वाकार है। इसी प्रकार जितने भी भाव हैं वह सर्वभावमय चेतन आत्मा ही है। अज्ञानवश हम तत्व को न जानकर नामरूप में ही अटक

गए हैं और रागी–द्वेषी बन रहे हैं।

शक्ति ही कर्ममय है। प्रीति ही सुखमय है।
ज्ञान ही सम्बन्धमय है। केवल आत्मा ही आनन्दमय है।

अहंकार को दुबला करना बहुत शुभ है, मोटा बनाये रहना अशुभ है। अहंकार जितना मोटा होता है उतने ही अधिक पाप बनते हैं। अपने तन मन पर जब अधिकार नहीं जम पाता, तब दूसरों पर अधिकार मानना, उनसे अपने मन की पूर्ति चाहना अहंकार का अन्धापन ही है। अपने प्रति क्यों का सवाल करना तो ठीक है दूसरों के साथ क्यों का सवाल नहीं उठाना चाहिये। अहंकार ही हिंसक होता है। अहंकारी व्यक्ति को कोई भी सदा सुखी नहीं रख सकता और अहंकार रहित व्यक्ति को कोई दुखी नहीं कर सकता।

गुण के अभिमान में ही परदोष दर्शन का प्रभाव पड़ता है। जो आत्मा परमात्मा से युक्त है वह महात्मा। जो अहंकार संसार के पदार्थों को लिए हुए है और अहंकार को देखने वाला ही वद्ध जीवात्मा है।

पथिक

*****

सर्वनाम रूपों के प्रकाशक परमात्मा को प्रणाम करते हुए हृदय प्रसन्न है।

पत्थर की मूर्ति में भी शरणागति एवं विश्वास धारणा का परम द्वार खोल देती है इसके विपरीत भगवान के दर्शन से भी अहंकार के लिये शान्ति, तृप्ति का द्वार नहीं खुलता। सन्तों का निर्णय है कि ऐसा कोई क्षण नहीं जब आनन्दमय परमात्मा, सुख स्वरूप आत्मा विद्यमान न हो, बिना कुछ किए ही प्राप्त है। परमात्मा है, इसीलिये हम हैं परन्तु ज्ञान स्वरूप अहं आकारों को ओढ़ कर सत्य से विमुख हो रहा है। परमात्मा कितना महान उदार है कि ऐसे पापी, दोषपूर्ण, पतित अहंकार

से भी घृणा नहीं करता। अपने ज्ञान को, प्रेम को, शक्ति को देना बन्द नहीं करता, उसी की शक्ति, चेतना, ज्ञान, प्रेम के द्वारा यह अहंकार अपनी पूर्ति कर रहा है। इतना ही नहीं पतित से अहंकार को भी वह प्रभु कभी न कभी पावन बना कर अपना आनन्द द्वार खोल देता है। इन गुरू वाक्यों से हमें सुन्दर प्रेरणा मिलती है।

1. किसी को सुखदाता न मानो तभी राग मिटेगा।
2. दुखदाता भी किसी अन्य को न मानो, तभी द्वेष मिटेगा।
3. संसार में किसी वस्तु व्यक्ति से ममता न करो, कामना न रखो तभी स्वाधीनता सुलभ होगी।
4. जब तक किसी को सुखदाता, दुखदाता मानोगे तब तक राग द्वेष से मुक्त हो ही नहीं सकते।
5. जब तक मिले हुए तन धन जन को अपना मानोगे तब तक मोह, ममता, आसक्ति कामना से छूट ही नहीं सकते।
6. यह अहंकार ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि विकारों को ढोते हुए कितना अशान्त दुखी हो रहा है, फिर भी सावधान होकर अपने को नहीं देखता।

तुम्हारी बुद्धि बहुत सुन्दर है यदि तुम अपना ही चित्र देखो दूसरा बीच में न आने पाये। तीन बातें स्मरण रखना है।

1. ज्ञान अपने निरीक्षण के लिए।
2. प्रेम केवल प्रभु के लिए।
3. शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता, निष्काम सेवा के लिए।

भूत के आक्रमण से बुद्धि को बचाती रहो। वर्तमान में कर्तव्य पालन करते हुए दूसरे के अधिकार की रक्षा करती रहो। अपने मन की पूर्ति से शक्ति को बचाते हुए अक्सर तुम वही करती हो जो तुम्हें ठीक

लगता है। मन की पूर्ति से मन बलवान ही रहता है। प्रेम की प्रधानता में ही दूसरों की पूर्ति की उदारता होती है। सेवा, दान, पुण्य वही करती हो जो तुम्हारा चुनाव होता है। प्रसन्न रहो तो तुमसे बहुत पुण्य होगा। अप्रसन्न होना ही पाप का स्वागत है। प्रसन्न रहना ही बहुत बड़ा अपना हित साधते रहना है। वर्तमान में ही रहो, भविष्य का चिन्तन छोड़ती रहो। भूतकाल की स्मृति न दुहराओ, स्वास को देखती रहो। स्वास लो तब मन ही मन **'मैं'** और निकले तब **'हूँ'** का मनन करो। या **सोहं** का मनन करो। विज्ञानमय कोष पर अधिकार मिल जाये तब पता चलेगा आनन्द तुम्हारे भीतर ही है और ऊपर उठने पर तो तुम्हीं आनन्द हो, तुम्हीं नित्य चेतन हो, तुम्हीं ज्ञान स्वरूप आत्मा हो, परमात्मा से भिन्न नहीं हो। तुममें कोई विकार बन्धन है ही नहीं। असंग होते ही तुम नित्य मुक्त हो। अभी अहंकार दुखी सुखी हो रहा है, मन ही सारे द्वन्दों को रचता रहता है, तुम्हें अहंकार को छोड़ना नहीं है बल्कि अहंकार से मुक्त होना है। मन के पार जाते ही तुम नित्य शुद्ध मुक्त बोधस्वरूप हो।

पथिक

*****

परमेश्वर की नित्य चेतन स्वरूप आत्मा को स्मरण !

यह सन्त वचन हैं :–

1. महत्वाकांक्षी अहंकार जो भी सेवा दान तप साधना करेगा उससे अपनी महत्वाकांक्षा ही पूर्ण करेगा।
2. महत्वाकांक्षा रहते अहंकार का शान्त रहना असम्भव है।
3. अहंकार के प्रत्येक सम्बन्ध दर्पण की भाँति उसे ही प्रकट करते हैं, दर्पण में वही दीखता है जो देखने वाले के मन में होता है।
4. अहंकार स्वयं ही कामना, स्पृहा, ममता, आसक्ति के कारण

अशान्त होता है इसलिए उसे दूसरा कोई शान्ति नहीं दे सकता।

5. अहंकार स्वयं अपनी कामना की अपूर्ति में ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, की अग्नि से तपता है फिर जिसके समीप होता है उसे भी तपाता है।

6. अग्नि तभी तक जलती है जब तक ईधन होता है। ईधन के जल जाने पर अग्नि स्वतः बुझ जाती है।

7. दुख रूपी दावाग्नि वहीं प्रकट होती है जहाँ मोह, लोभ, काम, अभिमान आदि कोई न कोई दोष रूपी ईधन होता है।

8. सुखासक्त अहंकार ही वस्तु व्यक्ति का भोगी बना रहता है।

9. जो व्यक्ति अपने दुख का कारण स्वदोष को देखता है वही त्यागी होता है दोषों का त्यागी ही शान्ति का अनुभव करता है।

10. कामना, वासना से ग्रसित को दुखी होने पर अपने दोष नहीं दीखते दूसरों के ही दीखते हैं। परदोषदर्शी अधिकाधिक दोषी बनता जाता है।

11. जो व्यक्ति अपने को जैसा है वैसा नहीं जान सकता तब दूसरों को कैसे जान सकेगा। यदि स्वयं को समझना कठिन है तब अज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

12. समर्पण में अहंकार खो सकता है। प्रेम में ही समर्पण सम्भव है।

13. श्रद्धा की पूर्णता में ही बुद्धि से मुक्ति मिलती है।

14. दो शरीरों के प्रति जो परस्पर आकर्षण है वह कामी अहंकार में है। दो मनों के बीच जो आकर्षण है वह सद्‌गुण दर्शी प्रीति के कारण है। दो आत्माओं के बीच में जो आकर्षण है वह श्रद्धा के कारण है, यही श्रेष्ठतम है।

15. दरिद्र अहंकार अपने को शुद्ध निर्विकार निर्दोष मानकर दूसरों

पर क्रोधित होता है। अपने ही द्वारा अपने को तपाता है– यही तो अपना हनन है, वह समझाने पर भी अपनी दुर्दशा को नहीं देखता, परन्तु भोगता रहता है।

16. पूर्ण पवित्रता तभी देखी जाती है जब बाहरी प्रभावों से चित्त विचलित न हो, सांसारिक आकर्षण, घृणा, द्वेष, आक्रोश, आवेग से बचे रहकर, रीझ–खीझ से अविचलित रहकर, निर्द्वन्द स्थिति में दृढ़ता बनी रहे।

17. दो भिक्षु ने अपने पात्र में पेय पदार्थ की भिक्षा प्राप्त की, एक भिक्षु यही मनन करता था कि आधा पात्र खाली रह गया, दूसरा भिक्षु आनन्द विभोर था, वह सोचता था कि धन्यवाद मेरा आधा पात्र भर गया।

18. एक व्यक्ति गाता हैः–

स्वामी मोहि न विसारियों, लाख लोग मिलि जांहि।
हमसे तुमको बहुत हैं, तुमसे हमको नाहि।।

19. एक व्यक्ति स्वामी की महिमा को न देखकर अपनी गरिमा को, अपने त्याग को, अपने प्रेम को सोचकर अपनी उन्नत दशा में स्वामी की संगति से पतन की कल्पना से खीझता है, शिकायत करता है, भाग्य को कोसता है।

20 अपने मन की प्रतिकूलता से दुखी अहंकार मिली हुई अनुकूलता को भूल जाता है और प्रतिकूलता का ही चिन्तन मनन करता है।

21. अहंकार रहित सेवक अपने स्वामी से जो कुछ भी अनुकूलता पाता है उसे पाकर अपने को धन्य समझकर स्वामी की दया, कृपा का स्मरण करते हुए कृतज्ञ एवं प्रसन्न रहता है, क्योंकि उसे जितना मिल गया, वही बहुत दीखता है। जो नहीं मिला उसका स्मरण नहीं रहता। वह पात्र के खाली भाग को न देखकर केवल आधा भरे भाग को ही देखता है।

22. कामना युक्त अहंकार मिला हुआ मान एवं अधिकार को भूल जाता है, जो नहीं मिलता वही याद रहता है।

23. निष्काम प्रेमी कहता है जो भी मुझे मिला है बहुत मिला है, मैं तो इतना पाने के योग्य न था। मैं बहुत ही तृप्त हूँ आनन्दित हूँ।

24. सकाम सेवक कहता है, तुमने दूसरों को खुले हृदय से दिया पर मुझे समय न दिया, अधिकार न दिया, बल्कि दुराव किया, छल किया, कपट किया।

25. वासना तथा कामना से भरा अहंकार दरिद्र रहकर मरता है। लेकिन उपासना तृप्त प्रेमी सम्राट हो जाता है।

26. चारों ओर परमात्मा की कृपा दया को बरसते हुए अनुभव करना, परमात्मा में क्षण–क्षण अपने को गतिमान देखना उपासना है।

27. प्रेम से भरा हृदय उसी का स्मरण करता है जो बिना मांगे मिला है। वह कृतज्ञता से, प्रसन्नता से, नम्रता से खिला रहता है।

28. देहमय, मनोमय अहंकार अपने समीपवर्तीजनों में वही देखता है जो उसके भीतर होता है। एक चमार के लिए दुनियाँ में जूतों के सिवाय कुछ नहीं है। आत्मज्ञानी के लिए अविनाशी प्रेमतत्व के सिवाय सब दृश्य मिथ्या है।

29. दृश्य के स्मरण से वह स्मरण हो रहा है जो दृश्य का आश्रय अदृश्य सत् चेतन तत्व है।

30. अहंकार में जो हम नहीं है, जो अपना नहीं है, जिस पर अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है उसी का स्मरण रहता है।

31. प्रेम में श्रद्धा सम्पन्न अहंकार दानी बनता है, अप्रेम में दरिद्र अभिमानी बना रहता है।

32. प्रेम को प्रत्येक वस्तु व्यक्ति की आसक्ति से मुक्त कर लेने पर

सेवा, त्याग एवं दान पूर्ण हो पाता है। मेरा मानने से ही आसक्ति बढ़ती है। ममता का अन्त होने पर चाह का अन्त होता है। आसक्ति ही लोभी, मोही, कामी बनाती है। जिसमें आसक्ति है उसकी सेवा करने से दोष से छुटकारा मिल जाता है।

33. किसी संग की इच्छा नहीं करना है। अपनी कामनापूर्ति का पक्ष न लेकर अधिकारी सम्बन्धी की सेवा करना है।

34. जिस संगति से अशान्ति हो, दुख हो, दोष बढ़ते हों उस संगति का त्याग करना चाहिये।

जो कुछ तुम्हारे किए बिना भीतर बाहर होता हुआ दीखे तो उसे दृष्टा साक्षी भाव से देखो। अपने को असंग रखकर परमात्मा से नित्य युक्त अनुभव करो। प्रकृति में सभी कार्य स्वतः हो रहे हैं। तुम भिखारी अहंकार को ही पहिचाने रहो और पूर्ण परमात्मा की आत्मा को देह मन बुद्धि अहंकार में चेतन रूप से व्यापक अनुभव करती रहो। जो वस्तु अथवा व्यक्ति सर्वोपरि प्रिय होती है वही प्रेमास्पद बन जाती है। तुम्हारे हृदय में जो सर्वोपरि प्रिय है वही तुम्हारा प्रेमास्पद है। अब उस प्रेमास्पद से विनाशी नाम के पीछे अविनाशी तत्व को बार–बार स्मरण करती रहो। यही साधना तुम्हें सत्य में प्रतिष्ठित कर देगी। विनाशी में अविनाशी को दिव्य प्रेम एवं ज्ञान के रूप में अनुभव करो। सदा शान्त, प्रसन्न रहकर अन्तर निहित प्रेम स्वरूप प्रभु की कृपा का स्मरण करते हुए धन्यवाद दो। अनुकूलता में दया का स्मरण करो और प्रतिकूलता के दुख में कृपा का अनुभव करते हुए शान्त मौन होकर जो भी हो रहा उसे ज्ञान में देखो। तुम्हारा प्रेमास्पद नित्य ज्ञानरूप में, प्रेमरूप में अखण्ड शक्तिरूप में तुम्हारे हृदय में ही है।

पथिक

*****

अपने ही परम प्रेमास्पद प्रभु का परम आश्रय प्राप्त करने के

लिये आतुर प्रेममयी ज्ञानमयी आत्मा को विनाशी नामरूप में स्मरण!

मुझे तो दीखता है कि तुम्हारे ऊपर प्रभु की बहुत ही दया के साथ कृपा सुलभ हो रही है। दया से तुम्हें सुविधा जनित सुख सुलभ है और कृपा इतनी अधिक है कि सत्संग के प्रति तुम्हारे हृदय में प्रबल अटूट श्रद्धा है। लोग वर्षों तीर्थ में रहते हैं पर स्नान और मन्दिर दर्शन अथवा कथा में ही अटके रहते हैं। तीर्थ का वास्तविक लाभ सन्तों के समागम से मिलता है। सन्त समागम एवं सन्तों की सत्कथा श्रवण से फिर सन्त में जब गुरू भाव में श्रद्धा जाग्रत होती है तब गुरू सानिध्य सुलभ होता है। गुरू का योग श्रद्धा के द्वारा ही हो पाता है। गुरू कोई आकृति या व्यक्ति नहीं होता, गुरू तो ज्ञान स्वरूप आत्मा ही है, वह किसी सन्त के माध्यम से मिल पाता है। तुम्हें वह भी सुलभ हो गया, यह सब तुम्हारे संयमी, तपस्वी, धर्ममय जीवनचर्या का फल है। अब आगे की यात्रा पूरी होनी है। किसी प्रकार ज्ञान ज्योति से अपनी अन्तर ज्ञान ज्योति को प्रकाशित कर लो। तुम प्रायः यह कहा करती हो हमारा सुधार कृपा से ही होगा, तो यह बताओ सुधार में बाधक काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता आदि दोषों में कौन दोष तुम में प्रबल है, तुम्हें उसका पता तो होना चाहिये। मन की इच्छापूर्ति से सुख ही मिलेगा पर तृप्ति तो होगी नहीं। सत्य तो तुम्हीं हो, अपना संग ही सत्संग है, देह, मन, बुद्धि के द्वारा अन्य का संग सत्संग में बाधक है।

पथिक

*****

विनाशी नाम रूप में ज्ञान स्वरूप आत्मा को स्मरण!

मेरी तो यही सम्मति है कि मन की न मानकर बुद्धि की मानो, गीता की, रामायण की मानो, विवेक की, ज्ञान की मानो और जो कार्य मिलता है उसे ही पूर्ण करो। व्यर्थ दौड़ भाग से क्षणिक सुखाभास होगा, थकावट होगी फिर वहीं लौटना होगा जहाँ से यात्रा शुरू हुई

थी, वहीं विश्राम मिलेगा जहाँ से संकल्प उत्पन्न हुआ था। कामनाओं के त्याग में ही शान्ति है, पूर्ति में तो थकावट ही है। रजोगुण की प्रबलता में ही तीव्र कामनाएं अशान्त बनाती हैं। साधना, भजन में प्रीति बढ़ जाये, तो ऐसा न हो। मुमुक्षता प्रबल न हो तो अध्ययन, जप, ध्यान, ज्ञान भी अशान्ति नहीं मिटा पाते। वाह्य सम्बन्ध, भूमि, भवन, परिवार के त्याग का संकल्प लोगों में होता है परन्तु लोभ, मोह, अभिमान, आसक्ति, कामना, सुखस्पृहा के त्याग का संकल्प दृढ़ नहीं देखा जाता या तो किसी की सेवा बने या फिर कामना, स्पृहा, अहंकार, ममता का त्याग हो जाये। सेवा तो जहाँ हो वहीं हो सकती है। विद्यालय का कार्य भी सेवा ही है यदि वेतन के द्वारा अपनी इच्छा पूरी न करके दुखी की आवश्यकता पूरी की जाये।

तुम स्वयं ही महात्मा हो, अपना ही संग करो। यदि आत्मा, परमात्मा की अभिन्नता का बोध हो जाये तो तुम्हीं महात्मा हो। यदि तुम्हारे भीतर मान की चाह न होती तो हजारों महात्माओं से बढ़कर तुम दर्शनीय होती मुझसे बहुत ऊपर होती।

पथिक

*****

विनाशी देह में प्रकाशित अविनाशी ज्ञान स्वरूप चेतन्य देव को नमस्कार!

जीव स्वतन्त्र है चाहे तो निष्काम प्रेमी भक्त बने या फिर कामी, क्रोधी, लोभी ईष्यालु बना रहे। जो हम निर्मित करते हैं उसे हमको ही मिटाना पड़ता है। रामकृष्ण को स्वयं से निर्मित काली की मूर्ति को स्वयं ही मिटाना पड़ा था। जिस शक्ति के दुरूपयोग से हम कामी, क्रोधी ईष्यालु, द्वेषी बनते हैं उसी शक्ति से दृढ़ संकल्प द्वारा सदुपयोग करते हुए त्यागी, प्रेमी, सहिष्णु हो सकते हैं। राग, द्वेष न रहना ही इन्द्रियों को वश में रखना है। रागी, द्वेषी, क्रोधी को मिलता कुछ नहीं व्यर्थ शक्ति नष्ट होती है। किसी सहायक के बिना जब चाहे तभी

निर्मल, निष्काम, निर्लोभी हो सकते हैं, परन्तु हम चाहते ही नहीं। हम जो दोष, गुण या शब्द क्रिया बार–बार दोहराते हैं उसी का अभ्यास हो गया है। अभ्यास के विपरीत अभ्यास ही पूर्व अभ्यास से मुक्त होने का साधन है।

प्रायः प्राप्त अवसरों को खो देने पर कई जन्मों तक उन शुभ अवसरों से वंचित रहना पड़ता है। धन्य हैं वे साधक जो प्रतिकूलता में भी शान्ति, सन्तोष, प्रसन्नता से भरे रहते हैं। मानवता के विकास में पशुवृत्तियों को जीतना ही पड़ेगा। शक्ति के दुरूपयोग से पतन होता है उसी शक्ति के द्वारा सेवा का तथा त्याग का एवं सर्वस्व समर्पण का संकल्प पूर्ण होता है। उचित यही है कि वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य द्वारा दूसरों की सेवा होती रहे, यही अपने उद्धार का साधन है। अहंकार भिखारी है, दरिद्र है, यह संसार में धन, संयोग भोग, सम्मान, प्रतिष्ठा से ही तृप्त होना चाहता है, जो सम्भव नहीं है। इस अहंकार के पीछे आनन्द स्वरूप सर्वदृष्टा अनन्त सत्ता निरन्तर विद्यमान है। इसी का स्मरण मुक्ति, भक्ति, शान्ति के लिए सरल उपाय है।

मन में रजोगुण का वेग है, इच्छा प्रबल होती है, शक्ति के बिखरने के लिए कोई माध्यम चाहिये। नेत्र बन्द कर मौन, शान्त रहना सर्वोपरि एकान्त है। केवल स्वास को ही मन से देखते रहना यह उत्तम साधना है। आपके भीतर जो नीरसता है इसका कारण शरीर की प्रतिकूलता भी है, शक्ति की क्षीणता भी है। शक्ति की अधिकता में इच्छा तीव्र होती है, बहुत अधिक उत्साह एवं उत्सुकता, होती है। शक्ति के ह्रास होने पर सब शिथिल होता जाता है। शक्ति के द्वारा मन बहुत चंचल रहता है। शक्ति की कमी से मन सूखने लगता है। इच्छा की पूर्ति से मन हरा भरा होता है। कामना बहुत प्रबल रहती है जो कुछ मन की स्थिति है इसका कोई भरोसा नहीं। लेकिन यह नैराश्य तथा वैराग्य की स्थिति अच्छी है। राग बढ़ना अच्छा नहीं है। प्रसन्नता तो तभी रहती है जब मन की पूर्ति होती रहे। जब आत्मा में ही प्रीति होती

है आत्मा में ही सन्तुष्टि और तृप्ति रहती है तब पराश्रित रहने वाली खिन्नता का अन्त होता है। जब तक संसारिक वस्तुओं, व्यक्तियों में प्रसन्नता निर्भर रहती है तब तक पराधीनता के कारण सुख–दुख का द्वन्द चलता ही रहता है।

पथिक

*****

प्रेम स्वरूप प्रभु की नित्य ज्ञान स्वरूप आत्मा को स्मरण!

तुम प्रसन्न रहो, प्रेम से हृदय को सदैव भरे रहो, जिसे देखो उसे प्रेम भाव से देखो। पशु, पक्षी, फूल, पत्ते, चप्पल, जूते, कपड़े, खिलौने, काँटे सभी कुछ परमात्मा की प्रकृति में हैं। सभी को प्रेम से ही देखो। एक मालिक सेवक की दी हुई ककड़ी खाने लगा, वह बहुत कड़वी निकली। मालिक ने सेवक को दे दी, वह सेवक सब ककड़ी बिना मुँह बनाये ही खाता गया। सेवक बोला कि मेरे मालिक की दी हुई अनेकों वस्तु बड़ी स्वादिष्ट लगती रहीं यदि एक ककड़ी कड़वी है तो मैं उसे कैसे छोड़ दूँ। वह मेरे प्यारे मालिक का प्रसाद है। अतः मुझे अति आदरणीय है। इसी प्रकार तुम सब कुछ को प्रभु में ही देखो, प्रभु की ही वस्तु, व्यक्ति जानकर सबको स्वीकार करती जाओ। प्रभु ही अनुकूल प्रतिकूल रूपों में तुम्हारी समता को पुष्ट करना चाहते हैं। विषमता को मिटाना चाहते है। कोई तारीफ करे तो समझो कि प्रभु इस रूप में मेरे अहंकार को तृप्त कर रहे हैं और जब कोई अपमान करे तब समझ लो कि प्रभु इस रूप में मेरे अहंकार को सुखा तपा कर क्षीण करना चाहते हैं तुम हर परिस्थिति में शान्त मौन, प्रसन्न, समस्थित रहकर देखती जाओ। सारा जीवन शिक्षा के लिए है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध के प्रकट होने पर इन दोषों को देखती रहो, इनके अनुसार कर्म न करो, मौन ही रहो। अपने चेतन बिन्दु में वृत्ति को शान्त करो। आँख बन्द कर देखो शरीर में मैं कहाँ हूँ। मैं का बोध मात्र रहे और कोई

स्मरण न आये, मेरा कुछ न रहे, तब देखो धड़कन, नाड़ी, श्वास किसके द्वारा चल रही है। वह आत्मा नित्य निर्विकार है, वही तुम हो। जो तुम्हारे प्रेम में है उसे भिन्न न जानो, उसी में तल्लीन रहकर शान्त रहो। कामना दुखकारी है। जब कामना नहीं; वासना नहीं; तब तो शान्ति ही शान्ति है।

पथिक

*****

परम प्रभु की ज्ञान स्वरूप आत्मा को नाम रूप में स्मरण!

यह कई बार बताया गया है कि दर्पण में मुख जैसा होता है वैसा ही दीखता है। उसी प्रकार भिन्न भिन्न संग रूपी दर्पण से जो कुछ भीतर दोष गुण होते हैं वे सब प्रकट हो जाते हैं। संग से ही तुम्हारे भीतर अहंकार तथा उसके साथ चलने वाले मान की तृष्णा और उस पर बाधा पड़ने पर क्रोध, द्वेष प्रगट होता रहा। लोभ की प्रबलता न थी, इसलिये लोभ प्रकट नहीं हुआ। कामनाएं प्रबल नहीं हुई उसी क्रम में संग से छिपी हुई श्रद्धा जाग्रत हुई। अब श्रद्धा के साथ चलने वाले नम्रता, उदारता, सहिष्णुता, प्रेम, निष्कामता आदि दैवी गुण वृत्तियाँ भी क्रमशः जाग्रत हो रही हैं यह बड़े सौभाग्य की बात है। गुण हों या दोष हों उसके अनुरूप संग से दोनों सबल होते हैं यदि कुछ दिन श्रद्धेय गुरूजनों का संग न मिले तो श्रद्धा के साथ रहने वाली दैवी वृत्तियाँ जीर्ण क्षीण हो सकती हैं। इसी प्रकार यदि अहंकार जनित दोषों की पुष्टि के अवसर न मिलें तो वे भी जीर्ण क्षीण हो सकते हैं। किसी संग से दोष तथा किसी संग से गुणों का विकास होता जाता है। चाहे गुण हो या दोष जो बार–बार दोहराया जाता है उसी का सहज अभ्यास हो जाता है। अहंकार की खुराक न मिलने से और सत्संग सुलभ होते रहने से जो भी आसुरी वृत्तियाँ है क्रमशः शान्त होती जाएँगी।

विज्ञानमय कोष के ऊपर आनन्दमय कोष में जो विशुद्ध प्रेम तत्व है वही मनोमय कोष में मोह का रूप ले रहा है वही नीचे स्तर में सुख से सम्बन्धित होने पर काम कहा जाता है। जो नीचे काम है वही ऊपर जाकर सर्वोच्च स्तर पर केवल प्रेम के रूप में विद्यमान है, वही आनन्द के रूप में अनुभूत होता है। हृदय में आत्मा आनन्द रूप है, प्रेम उसका प्रकाश है। वही आनन्द इन्द्रियों के बाहर आकर सुख रूप में भासित होता है। जो हो रहा है उसे देखती चलो, यह भी एक दिशा है, यात्रा है, इसका भी अन्त होगा।

अभी तक यह यात्रा बन्द थी, अब इसी दिशा में गुण दोष प्रकट होंगे। अध्ययन में समय बिताओ, दृष्टा होकर भीतर देखो बस चेतना को प्रीति के आकार में देखती रहो, कल्पना के चित्र बनने दो, भावना से अंगीकृत होने दो, तुम देखती भर रहो, और यह भी निरीक्षण करो ऐसी कौन सी कामना जाग्रत होती है, जो पहले कभी नहीं हुई। बहुत अरमान उठेंगे, कल्पना चित्र बहुत ही मोहक, रसमय होंगे, बहुत आतुरता, उत्सुकता, अधीरता बढ़ेगी। बेग प्रबल होगा तुम्हें दृष्टा होकर देखना है। श्रद्वेय को ज्ञानरूप में अपने साथ देखो। अभी तुम्हें बहुत सरल होना है। छल, दुराव, भय, छोड़ देना है। जिस प्रकार छोटे बालक छल, चतुरता, कपट से रहित होते हैं उसी प्रकार तुम्हें होना है। यह सब प्रेम के प्रभाव से ही सम्भव है। अहंकार की कठोरता, दरिद्रता बाधक बनती है। तुम्हारी श्रद्धा ही तुम्हें विनम्र, सरल, उदार, सहिष्णु, दानी, गरीब, दीन बना सकती है। इन सद्गुणों से ही तुम अपने श्रद्धास्पद को सन्तुष्ट कर सकती हो। बस दीन बनो, गरीब बनो, अकिन्चन होकर रहो। गर्व, अभिमान, सम्मान की दरिद्रता को पास न आने दो। अभी तुम प्रभु के प्रेम का आस्वादन करते हुए तृप्त हो सकती हो। मान का, अधिकार का, अपनी पूर्ति का लालच रहने ही न दो।

पथिक

*****

विनाशी देह में परमेश्वर की प्रेमस्वरुप आत्मा को सादर प्रणाम!

जिस तरह दर्पण में मुँह देखा जाता है उसी तरह ज्ञान में शरीर की, मन की, प्राण की समस्त गतियों को देखते हुए रहना, अपने को असंग एवं मुक्त बनाने की साधना है। क्रोध आए तो यह नहीं सोचना कि मैं क्रोधी हूँ बल्कि देखना कि यह क्रोध है और फिर जानना है कि यह क्या करना चाहता है। सजग होकर देखते रहना ही सहज साधना है, इसमें किन्चित भी भ्रम नहीं है। कठोर हृदय से ही कठोराघात होते हैं। प्रेम से द्वन्द कोमल होते हैं, कठोर एवं कटु आधार नहीं रह जाते हैं। अहंकार ही अभिमानी होता है लेकिन प्रेम से अहलादित हृदय कोमल विनम्र कृतज्ञ रहा करता है। यही सिद्धि तुम्हें प्राप्त करनी है। किसी के प्रति वाणी द्वारा आघात न हो, इसके लिये सदा ही सजग रहना चाहिये। परम प्रभु की याद में समय बिताते हुए, कार्य होते हुए देखो, कर्ता न बनो। कर्ता तभी तक बनता है जब तक अहंकार की दीवार नहीं टूटती है। अहंकार के पीछे चेतन प्रकाश है, अहंकार के आगे उसी के कारण अंधेरा है। दिन में अनेकों बार एकदम स्तब्ध हो जाया करो, ठहर जाया करो, एकदम ऐसा अनुभव करो कि सब कुछ ठहर गया है, शान्त है, गति रूक गई है। दस पाँच सेकेन्ड ऐसे ही शान्त स्तब्ध होकर देखो।

तुम यह कल्पना न करो कि कहीं जाने से अशान्ति, दुख से मुक्ति मिलेगी। यह अहंकार का पाप है जो बेचैन एवं अशान्त बनाकर इधर उधर नचाता है। पाप से ही अशान्ति, पाप से ही दुख, पाप से ही शक्ति सम्पत्ति का दुरुपयोग, पाप से ही ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, कामादि विकारों की प्रबलता होती है। तुम्हारी बुद्धि के साथ विद्या है इसलिए समझ में आ सकता है । किन्तु जहाँ जाओगी, मन साथ ही रहेगा, वातावरण का, संग का अच्छा प्रभाव पड़ेगा, लेकिन भीतर के भाव विचार जब तक निर्वासित न होंगे, तब तक वह सन्तापित करते रहेंगे।

एक सन्त ने कहा है कि तुम किसी संगति से, भीड़ से, कार्य क्षेत्र से ऊब कर भागना चाहते हो, इससे लाभ नहीं होगा, इसलिए तुम ऐसे मन से ही ऊबो, मन से नफरत करो, मन को ही धिक्कारो, मनोविकार को दूर करो, मन की न मानो। मन ही तो तुम्हारा सब कुछ का भोगी बन रहा है। कितना सुन्दर होता कि तन मन किसी की सेवा में लगा होता, किसी के काम आता।

अभी तो मन ही सबको अपनी पूर्ति का साधन बनाता है। अहंकार अपनी ही पूर्ति का पक्षपाती है। अब तो एक ही दिशा है कि तुम अपने में ही अपने प्रियतम आत्मा परमात्मा की उपासना करो। आत्मा ही परम प्रियतम है, प्रेम स्वरुप है। आत्मा के होने से ही शरीर प्रिय लगते हैं। यदि आत्मा न हो तो खाल से लिपटे हुये अस्थि, मांस, पिण्ड जिसमें मल, मूत्र, थूक लार, कफ, रक्तादि घृणित द्रव्य भरे हैं, इस देह को कुत्ते गीध भले ही चाहते हैं वर्ना चेतन आत्मा के बिना यह देह कदापि प्रिय नहीं हो सकती। अब भी सावधान होकर देखो कि यदि तुम्हारे मन में काम वासना नहीं है, लोभ नहीं है, तब तुम पर किसी व्यक्ति का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। तुम्हारे लिए किसी संग का त्याग आसान है। कामी लोभी संगासक्ति का त्याग नहीं कर पाते। जो कामी व्यक्ति हैं उनको तभी आसक्ति से छुटकारा मिलता है जब वे अपने सर्वस्व तन को, मन को उसी की सेवा में लगा देता है जिससे अपने मन की पूर्ति चाहते हैं। कामी का, लोभी का मन बहुत ही दरिद्र होता है। इसीलिये जिससे अपने मन की पूर्ति होती है उसे तन धन अर्पण करता है और जब पूर्ति में बाधा पड़ती है तब क्रोध अन्धा होकर तन से वाणी से हिन्सक होता है। तुम स्वयं में ठहरो, यही मुक्ति है। कल्पना के जाल को छोड़ दो। भीड़ से, स्कूल से, ऊबते हो तो मन से ऊबो। अहं के आकार तुम्हारे द्वारा ही निर्मित हैं। जो हो रहा है प्रभु का विधान समझकर स्वीकार करती जाओ। दुखी होने पर तुम हिंसक ही बनोगी। सुख को भीतर जानकर अहिंसक हो सकती हो। सत्यानन्द को पाना

नहीं है जानना है, खोजना नहीं है पहिचानना है। तुम जो हो सो पूर्ण परम तृप्त, परम प्रिय हो, तुम प्रेम ही हो, स्वयं में ही हो, स्वयं में ही प्रेम से तृप्त हो जाओ। जिस संग से अशान्ति हो उस संग की कामना ही छोड़ दो। मैं तुम्हारे हृदयस्थ आत्मा को प्रणाम करता हूँ। आत्मा परम प्रेमास्पद है, तुम्हारी देह नहीं है। देह का संग घोर असत संग है। मुझे तो देह द्वारा सेवा की तनिक भी जरूरत नहीं है। शरीर छूटते समय भले ही किसी की अपेक्षा हो। तुम अपने चेतन स्वरूप का स्मरण करो। जो स्वयं में स्थिर है वही आत्मवान है। वासनामय चेतना को उपासनामय बना लो। तुम परम पवित्र चेतन आत्मा हो।

पथिक

*****

अनेक आकारों को स्वीकार किये हुये नित्य चेतन स्वरूप को स्मरण!

तुम जहाँ जाओगी वहाँ यह मन साथ जायेगा। शायद तुम मन की होकर ही कुछ सीख सकोगी या फिर मन की कोई बात मानो ही नहीं, तब मुक्त होना सम्भव होगा। यदि श्रद्धा से पाप नष्ट होते हैं तो इसके विपरीत अश्रद्धा से परम पाप बन जाते हैं। जहाँ बुद्धि मौन हो जाती है तभी श्रद्धा होती है और जब बुद्धि तीव्र होती है तब अन्ध श्रद्धा नहीं टिक पाती। एक बार जब छिद्र बन जाता है तब उसे कदाचित बन्द करा जाये फिर भी वह कभी भी फूट जाता है, छिद्र बड़ा ही होता जाता है। तुम्हारी श्रद्धा वहीं टिकेगी जहाँ दोष न दीखें और दोष तभी नहीं दीखेंगे जब भर पूर प्रेम होगा। प्रेम तभी पूर्ण होगा जब अपने मन की पूर्ति का पक्ष न होगा और अहंकार समर्पित हो जायेगा। यदि कहीं श्रद्धा स्थिर नहीं हो तब सर्वोपरि श्रेष्ठ यही है कि तुम अपने में ही श्रद्धा करो। आत्मश्रद्धा होनी ही चाहिये। मन को चेतन आत्मा में ही स्थिर करो, किसी साधु महात्मा के पीछे न जाओ।

आत्मवान होना बहुत ही ऊँची बात है। यदि अभी से आत्मा में ही श्रद्धा दृढ़ कर लो, आत्मा में ही प्रीति लगाते रहो, आत्मा में ही संतुष्ट रहो, तब तो तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं। कोई भी कर्तव्य नहीं, मन की मानो ही नहीं, मन तुम्हारा नहीं है। तुम अपने को ज्ञान स्वरूप, चेतन स्वरूप अनुभव करो। देह को, मन को अपना न मानो और मन की न मानो, तभी तुम्हारी परेशानी दूर होगी। तुम्हारा मन ही तुम्हारा सर्वस्व है, वह किसी के समर्पित हो तभी तुम्हारा हित हो सकता है। मन की कामना जब पूरी नहीं होती, तब क्रोध प्रबल होता है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध में बुद्धि अन्धी हो जाती है। कामना ही उपासना में बाधक है। उपासना ही वासना से मुक्त बनाती है। जहाँ ममता है वहीं कामना बढ़ती है। कामना की पूर्ति से आसक्ति बढ़ती है। आसक्ति ही सत्यानुरक्ति नहीं होने देती।

पथिक

*****

परम प्रिय परम प्रभु की श्रद्धालु आत्मा में सद्भावों एवं सद्गुणों का स्मरण करते हुए नमो नारायण!

मन जब सुखी हो या दुखी हो तब विवेक पूर्वक निरीक्षण करते रहना चाहिए। सुखी होने पर ही वस्तु या व्यक्ति के प्रति लोभ, मोह, आदि दोषों की वृद्धि होती है और दुखी होने पर द्वेष, क्रोधादि विकारों की पुष्टि होती है। जहाँ तक बने सेवा के अवसर खोजते रहो। धन, मान, प्यार, अधिकार लेना सभी जानते हैं, प्रयत्न करते हैं, तरसते रहते हैं और जितना मिलता है उससे तृप्त भी नहीं होते हैं क्योंकि अहंकार भिखारी तो है ही दरिद्र भी है इसीलिये रामायण में कहा है।

नहिं दरिद्र सम दुख जग माही। सन्त मिलन सम सुख कछु नाहीं।।

सन्त महात्मा के प्रति श्रद्धा प्रेम होने पर ही त्याग और दान का बल आता है। धन, मान, प्यार अधिकार जो देने की हिम्मत रखते हैं

वही अधिक से अधिक पाने के अधिकारी होते हैं। लोभी, मोही, अभिमानी सुरक्षा की चिन्ता करते करते बूढ़े हो जाते हैं। जब प्रेम पर अहंकार हावी होता है तब सब गड़बड़ हो जाता है। प्रेम के साथ नम्रता, उदारता, सहिष्णुता, क्षमा, करूणा, प्रसन्नता, सजगता, तत्परता, विचार, विवेकपूर्वक परिणाम दर्शन की योग्यता, दूरदर्शिता आदि दैवी गुण होना ही चाहिये। अप्रेम में इन गुणों के विपरीत दोष दुर्विकार प्रबल हो जाते हैं। तुम अप्रेम की स्थिति में कभी न लौटो तब सभी सद्‌गुण तुम्हारे हृदय में हैं। प्रीति की पूर्णता में अपने प्रेमास्पद के प्रति संकोच करना, लज्जा करना, भय करना, छिपाना, दुराव करना अपने सेवास्पद के अनुकूल न होना तो बहुत ही विपरीत व्यवहार माना जाता है। कहीं लज्जा, संकोच करने से अपराध बन जाते हैं। पाप में संकोच, लज्जा, भय बहुत शुभ सुन्दर है। सेवा में प्रीति व दान में संकोच, भय, लज्जा, अशुभ असुन्दर है। लेने में संकोच, लज्जा शुभ है, अपने प्रिय को या सुपात्र को देने में कन्जूसी अशुभ है।

पथिक

*****

प्रेम स्वरूप प्रभु को बारम्बार नमन!

कोई भी सम्बन्ध या किसी की याद या तो लेने के लिये है या देने के लिए है। जो देना है उसे दे दो, जो लेना है उसे छोड़ दो, किसी के ऋणी न रहो। यह किसी पुस्तक में कहीं लिखा है। सच पूछो तो मेरे पास किसी को देने के लिए है ही क्या?जो कुछ तन मन आदि है वह तो मेरा है ही नहीं।

वस्तुओं की ममता आसक्ति, पराधीन बनाती है कभी दीनता और कभी अभिमान बढ़ाती है। दीनता अभिमान के रहते विषमता नहीं मिटती। विषमता मिटे बिना नित्य प्रसन्नता नहीं रहती। नित्य प्रसन्नता रहे बिना खिन्नता नहीं मिटती, खिन्नता मिटे बिना काम नहीं मिटता,

काम के रहते देहासक्ति तथा भिन्नता नहीं मिटती। भिन्नता मिटे बिना निसन्देहता, निर्भयता, चिन्मयता सुलभ नहीं होती। शुद्ध चित्त वही है जिसमें स्थिरता, प्रसन्नता, निर्भयता हो। तुम्हारे हृदय में जब अपनी कोई चाह न रहेगी, तब खिन्नता, क्षोभ, अशान्ति क्यों होगी। तुम चाहती हो कि कोई इच्छा है, इसका पता नहीं लगता, यदि कहीं जाने का मन होता है या छोड़ने की इच्छा भी इच्छा है, किसी को देखने की इच्छा भी इच्छा है। अपनी अनुकूलता की इच्छा है। इच्छा न हो तो शान्ति ही शान्ति है। जब तक चित्त शुद्ध न रहेगा तब तक अशान्ति, दुख, भय तृष्णा नहीं मिटती।

चित्त की अशुद्धी कैसे होती है– **1.** सामर्थ्य के दुरूपयोग से **2.** दोष की वेदना न होने से **3.** कर्तव्य का विवेक न होने से **4.** विश्राम न पाने से **5.** जिसे अपना माना है उसे प्यार न देने से **6.** किसी की सुनी हुई, देखी हुई, की हुई भूल की बुराई के आधार पर अपने को या दूसरे को सदा के लिए बुरा मान लेने से **7.** वर्तमान में नीरसता पकड़े रहने से **8.** व्यर्थ चिन्तन चलते रहने से **9.** संयोग की दासता से, वियोग के भय से **10.** जो कुछ हो जाय और जो कुछ करना पड़े उसमें प्रसन्न न रहने से **11.** चित्त को दबाते रहने से **12.** संकल्प की उत्पत्ति और पूर्ति के परिणाम को न देखने से **13.** लोभी, मोही, अभिमानी बने रहने से **14.** सीमित सुखों में आसक्ति से **15.** सीमित अहंकार को न छोड़ने से **16.** विवेक के अनादर से **17.** गुणों के अभिमान से, **18.** सीमित प्रीति से **19.** प्रेमास्पद के साथ भेद भिन्नता बनाये रहने से **20.** विनाशी देहादि वस्तुओं में राग से **21.** प्रतिकूलता में क्रोध से चित्त अशुद्ध रहता है। बुद्धि में जड़ता रहती है। विवेक के आदर से युगों की अशुद्धि मिट जाती है। अहेतुकी कृपा के आदर से अशुद्धि मिटती है। अहंकार ही मोही, लोभी, कामी, हिंसक पापी बना रहता है। असहयोग पूर्वक अपना सुधार अपने प्रति न्याय है। संकल्प की पूर्ति का जितना सुख होता है उससे अधिक संकल्प के त्याग से

शान्ति स्वतन्त्रता सुलभ होती है। ऊपर इक्कीस प्रकार के लक्षण चित्त की अशुद्धि के लिए हैं। इनमें कुछ लक्षण तो तुममें घटित होते ही होंगे। सेवा, दान, त्याग, प्रेम से चित्त शुद्ध हो सकता है। अब धन से सेवा तो हो जाती है, परन्तु तन की सेवा के पीछे मन अपनी पूर्ति चाहेगा तब सेवा कैसे होगी।

पथिक

*****

नमो नारायण!

तुम यदि वीरता का परिचय देना चाहती हो तो सत्संग से भागो मत। अहंकार की बलि जब तक न चढ़ाओगी तब तक यह अहंकार रूपी भैंसा तुम्हारी पवित्र शक्ति को नष्ट ही करता रहेगा। लाखों विद्वान नहीं जानते कि मनुष्य का पालतू पशु ही उसकी शक्ति को नष्ट कर रहा है। मनुष्य के साथ जो धन है उसका भोग सूक्ष्म शरीर से राक्षस ही कर रहा है और पदाधिकार का भोग अहंकार के भीतर रहकर मान की शक्ति कर रही है। कुछ अंश में देवताओं का अधिकार जहाँ कहीं प्राप्त है वहीं दान सेवा, शुभ कर्म बन रहे हैं। आप जहाँ जाओगी वहीं पर यह अहंकार अपनी सृष्टि लेकर साथ ही रहेगा। भले ही वहाँ आसुरी एवं पशुशक्ति को खुराक न मिले परन्तु जब लौटोगी तब फिर वहीं रहेगा। तुम इस दरिद्र भिखारी अहंकार को देखो, यही अशान्त है क्योंकि पता नहीं इसने कब कहाँ किस प्रकार अपने मान के लिये, लाभ के लिये, इच्छित सुखोपभोग के लिये हिंसा की है। तन द्वारा हिंसा अथवा पाप कर्मों का फल तन द्वारा भोगना पड़ता है और मन द्वारा होने वाली हिंसा के पाप का परिणाम मन को भोगना पड़ता है। स्थूल रूप में जिसे दुख कष्ट देकर शत्रु बनाया जाता है वह प्रथम तो स्थूल शरीर से बदला लेता है और शरीर छोड़ने पर वही पशु, वही क्रूर कर्मी मनुष्य सूक्ष्म रूप में काम क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष के साथ रहकर दुष्ट कार्य के लिए सहायक बनता है। दैवी उपासना में

बकरा, भैंसा की बलि देने की प्रथा है, यह चालाक मनुष्यों ने प्रथा बनाई है। वास्तव में शक्ति को सन्तुष्ट करने के लिए अहंकार की ही बलि देनी पड़ती है। तुम दूसरे से न भिड़कर दूसरे को शत्रु, विद्रोही, विरोधी न मानकर इस अहंकार को समस्त दुखों अनर्थों का मूल कारण समझ कर इसे ही कुचलो। विनम्रता के द्वारा इसे ही समर्पित करो। इसके जीते बिना किसी की अशान्ति नहीं मिटती। जो शक्ति अपने मान की रक्षा के लिये, अपने को निर्दोष सिद्ध करने में व्यय करती हो, उसी शक्ति से इस अहंकार की गर्दन पकड़कर सर्वमयी भगवती के आगे झुकाओ और ज्ञान रूपी तलवार से इसे काटो। वृन्दावन में लाला बाबू लखपती सेठ थे, विरक्त हो गये, सभी जगह भीख मांगकर वसर करते थे पर एक पूर्व के सम्बन्धी के यहाँ न जाते थे, क्योंकि अहंकार कहता था सबके आगे हाथ पसारेंगे पर इस घर में नहीं जायेंगे। जब तक ऐसी भावना रही तब तक प्रभु की कृपा का अनुभव नहीं हुआ। किसी प्रकार अपना अहंकार ही बाधक दीखने पर जब उस द्वार में भीख मांगी, सर झुकाया, उसी दिन परमशान्ति तृप्ति का अनुभव हो सका।

तुम्हारी भावना, तुम्हारे विचार ही तुम्हें अशान्त बना रहे हैं, वह अहंकार के साथ हैं। जब तुम्हारा कोई कसूर नहीं है, भूल नहीं है, तब न्याय सफाई देने की क्या जरूरत है और भीतर अभिमान है दोष हैं तब भी किसी के सामने न्याय कराने की क्या जरूरत है, पूरी शक्ति लगाकर तुम अपने आस पास अहंकारी जनों की करतूतों को न देखकर अहंकार के पीछे पवित्र आत्मा को, परमात्मा को नमन करती रहो। हिम्मत करो, अपने भीतर विजयी बनो। सहने का संकल्प करो।

जो तोकूँ काँटा बुए ताहि बुए तू फूल,
तोको फूल के फूल हैं वाकू हैं त्रिशूल।

पथिक

*****

नाम रूप में नित्य चेतन आत्मा को स्मरण!

प्राकृतिक विधान से जो कुछ जिसके भीतर होता है वही संग के प्रभाव से उमड़ता है। गुण और दोषों के पर्त के ऊपर नीचे पर्त लगे हैं। कोई संग, श्रद्धा को उभार देता है, जिससे श्रद्धा के सहयोगी सजातीय, नम्रता, उदारता, सेवाभाव आदि दिव्य गुणों के अनुसार प्रवृत्ति होने लगती है। संग से ही अहंगत वासना के प्रभाव से कभी काम, कभी लोभ, मोह, ममता, आसक्ति प्रबल हो उठती है और प्रतिकूलता होने पर ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि वृत्तियाँ भीषण रूप धारण करती हैं।

योग साधना में प्राणायाम स्वास की तीव्र घर्षण कराने से भीतर जो सद्भाव, दुर्भाव एवं सद्वासना दुर्वासना छिपी होती हैं वह उसी समय प्रबल होकर साधक को अपनी पूर्ति के लिये बाध्य करती है। साधक स्वासाघात के घर्षण से दस पन्द्रह मिनट बाद ही पागल की भाँति हँसने गाने लगता है, गाली बकने लगता है या कीर्तन, कविता, प्रलाप, आलाप, विलाप करने लगता है, नग्न हो जाता है, भागता है फिर वेग शान्त होने पर स्वयं बहुत शान्त होकर अन्तर में आनन्द का अनुभव करता है। जो वेग निकलने में अनेक वर्ष लगते हैं वह सात दिन की साधना में उमड़ कर रूपान्तरित हो जाते हैं। भीतर सभी के न जाने क्या क्या छिपा है। कई जन्म लगते हैं उसके विसर्जन में, लेकिन तीव्र साधना से वह बहुत कम समय में प्रकट होकर ऊर्ध्वगति में बदल जाते हैं। इसीलिये साधक को गुरू की समीपता सुलभ होने पर सावधान किया जाता है कि ऐसी साधना गुरू सानिध्य में साधनी होती है जिससे कि उसका किसी व्यक्ति से सम्पर्क न रहे। क्योंकि यदि विकारों का उभाड़ होगा, काम, क्रोध, लोभ, मोह की वासना उमड़ेगी तो वह अन्य से सम्बन्ध होने पर अति घोर अपराधी बना देगी। यदि अच्छी पवित्र वासना होगी तब उसे सर्वदानी त्यागी बना देगी। नाभि चक्र में संचित शक्ति काम, क्रोध, लोभ में बलात प्रेरित करती है। सब दोष प्रबल नहीं होते, जो दोष उमड़ता है और

तत्सम्बन्धित जो संकल्प उठता हे, बहुत तीव्रता से उठता है। यदि उसकी पूर्ति करने की स्वच्छन्दता रहती है तब व्यक्ति का पतन हो जाता है। यदि किसी प्रकार यह शक्ति नाभि चक्र से ऊपर उठकर हृदय चक्र को जाग्रत कर दे तो तुम साकारोवासना में बड़ी तेजी से उन्नति कर सकती हो। लेकिन वह शक्ति उर्ध्वमुखी नहीं हो पाती, नीचे ही आक्रोश, क्रोध, द्वेष, तथा परचिन्तन में व्यय होती है, या बह जाती है। ऊपर उठने की क्षमता नहीं रह जाती। ऐसी दशा में तुम्हें किसी व्यक्ति से सम्बन्ध न रखकर अकेले ही मन के वेग को एकान्त स्थान में देखना चाहिये। यदि क्रोध हो तो बन्द कमरे में दीवाल से लड़ना, तकिया को पीटना, बड़ी जोर से मुट्ठी बांधना, दांतों को कसकर दबाना चाहिये। एकान्त में यह वेग उमड़ कर शान्त हो जायँगें। यद्यपि यह पागलपन मालूम होगा परन्तु सच्चे पागलपन को रोकने का उपाय यह कृत्रिम पागलपन अति उत्तम है। तुम्हें, भलाई, बुराई, लड़ाई, मान, तिरस्कार, पूजा, प्रार्थना, क्षमा याचना जो करना हो एकान्त में करो इसका बहुत अच्छा परिणाम होगा। मन से पुण्य करने का फल तो होगा, लेकिन मन से पाप करने का, क्रोध करने का पाप न लगेगा। भगवान अपने साथियों को ज्ञान द्वारा ही निर्मोही, निर्लोभी, निराभिमानी, तत्वज्ञानी, निष्काम प्रेमी बना सके हैं।

पथिक

*****

नाम रूप में परम प्रभु की आत्मा को स्मरण!

तुम्हें कहीं शान्ति नहीं मिलती, कहीं अनुकूलता नहीं रहती। तुम्हारे साथ केवल कुछ धन है जिससे अनुकूलता रहती है, चाहे जहाँ खर्च करो, चाहे जहाँ चल दो। इसके अतिरिक्त मन की पूर्ति का और कोई साधन तो दीखता नहीं। तन भी साथ नहीं दे रहा है। जहाँ तक पुण्य है वहीं तक मन की पूर्ति का सुख मिल सकता है। जितनी पूर्ति होती है उतने ही पुण्य घटते हैं। दूसरों की सेवा उपकार से पुण्य बढ़ते

हैं। लेकिन जो व्यक्ति मन की पूर्ति चाहेगा वह सेवा कर नहीं पायेगा। यदि कुछ सेवा बनेगी वह अहंकार की पूर्ति में सहायक बन जायेगी। पूर्व में कुछ सेवा बनी भी है वह भी अहंकार ने पचा ली है।

कोटि कर्म बनते रहे सदा क्रोध की धार।
किया कराया सब गया जब आया अहंकार।।

तन किसी के काम आ नहीं रहा, केवल धन का दान ही हो पाता है, वह भी मनमुखता से ही होता है। अहंकार को दरिद्रता का विवेक होता नहीं है। केवल प्रेम से ही अहंकार पसीजता है, पिघलता है, गलता है। वह प्रेम अभी तक कहीं पूर्ण हो न सका जिससे भी सम्बन्ध है उसी से अहंकार अपनी ही पूर्ति चाहने लगता है। यदि तुम प्रेम से हृदय को भर लो, तभी तुमसे निष्काम सेवा, दान, त्याग हो सकता है। प्रेम में ही तुम विनम्र, सरल, उदार, सहिष्णु हो पाती हो। अप्रेम में पाप अपराध बन जाते हैं। प्रेम में ही तुम्हारे अहंकार की दरिद्रता दूर हो सकती है। तुम अभी तक प्रेम का आश्रय लेकर गरीब, अकिन्चन, विनम्र, सरल, सहिष्णु नहीं हो पाती हो। अहंकार भयंकर रूप धारण कर लेता है, वह पहले तपता है फिर बरसता है और कुछ समय के लिए शीतल होता है। यदि तुम सत्चर्चा में श्रद्धा रखती हो तो मेरा कुछ घटता नहीं है। यह तो तुम्हारा सौभाग्य है, खूब सुनो, मनन करो, तदनुसार व्यवहार करो।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी ज्ञान स्वरूप आत्मा को श्रद्धालु नाम रूप में स्मरण !

एक नियम नित्य सेवनीय है, अपने सभी साथियों को करना चाहिए। शाम को 6 बजकर 50 मिनट पर खड़े होकर शान्त मौन

रहकर ध्यान से जो कुछ भी परमात्मा की शक्ति से अपने आप हो रहा है उसे अनुभव करना है। 7 बजकर 5 मिनट तक यह मौन ध्यान है। एक आसन एक समय में मौन ध्यान से हम सभी आत्माओं में एकता की अनुभूति सजग होगी। उस मौन ध्यान में कुछ क्षण अन्त में अपने दिन भर के भले बुरे कर्मों का निरीक्षण करना है। गलत कामों के लिए क्षमा याचना करनी है और अच्छे कामों के लिए प्रभु को धन्यवाद देना है। जब हम कुछ न करके मौन है तब जो कुछ स्वास, धड़कन, नाड़ी, पाचन हो रहा है वह सब प्रभु की शक्ति से ही हो रहा है उस प्रभु को अनन्त शक्ति के रूप में ज्ञान और प्रेम के रूप में अनुभव करना है। तुम भी नियम से याद रखकर मौन ध्यान कर लिया करो। खड़े न हो सको तो बैठकर भी मौन रहो। 15 मिनट ठीक समय से नित्य मौन होना है, चाहे जहाँ रहो समय निकाल लो।

ये सन्त वचन नित्य स्मरणीय हैं :–

1. प्रेम में ही समस्त पुण्य हैं। अप्रेम में ही सारे पाप अपराध हैं।
2. किसी के प्रति दुर्भाव उत्पन्न होते ही पाप बन जाता है और उसकी प्रेरणा से कर्म बनते ही अपराध हो जाता है।
3. जिसके भीतर सुगन्ध या दुर्गन्ध, तपन या शीतलता जो कुछ होगी, वही चारों ओर फैलती है। सुगन्ध या दुर्गन्ध अपने भीतर से निकलती है, लेकिन व्यक्ति यह मानता है कि दूसरे लोगों से ही सुगन्ध या दुर्गन्ध आ रही है।
4. कहीं कहीं अनेकों व्यक्ति एक प्रकार के भले या बुरे विचार वाले अथवा कई व्यक्ति सुगन्ध या दुर्गन्ध लिये हुए एकत्रित हो जाते हैं।
5. नर्क को स्वर्ग और स्वर्ग को नर्क बना देना अपने शुद्ध या अशुद्ध मन का काम है।
6. **द्वेष करोगो द्वेष बढ़ेगा, प्रीति करोगे तो प्रीति।**

जैसा मुख वैसा दीखेगा, जग दर्पण की नीति।।

7. अपने पवित्र विचार ही अपने साथ स्वर्ग है अपने अपवित्र विचार ही अपने साथ नर्क है।

8. शरीर छूटने के बाद भी अच्छे विचार सुन्दर देवदूत के रूप में और भयानक विचार यमदूत के रूप में आस पास दिखाई देते हैं।

9. एक व्यक्ति दूसरे गाँव में जाकर एक वृद्ध से पूछता है कि इस गाँव के लोग कैसे हैं। वह वृद्ध पूछता है कि भाई तुम जिस गाँव से आये हो, वहाँ के लोग कैसे थे?वह उत्तर देता है कि मत पूछो–वहाँ दुष्ट लोग मेरे गाँव में रहते हैं। वृद्ध कहता है कि इस गाँव के लोग भी दुष्ट ही मिलेंगे। उसी वृद्ध से दूसरा यात्री यही प्रश्न करता है। वृद्ध पुनः उससे भी वही प्रश्न करता है कि जिस गांव से तुम आए हो वहाँ के लोग कैसे हैं?वह उत्तर देता हैः बड़े ही सज्जन साधु ! वृद्ध कहता है इस गाँव में तुम्हें सज्जन साधु ही मिलेंगे।

10. **अपनी बीती कहत हूँ , सुन लो साधु सुजान।**
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान।।

11. **सकल शोकदायक अभिमाना।**

12. दूसरों से कुछ चाहने वाला दूसरों के अधीन हो जाता है।

13. पराधीनता सब दोषों की जननी है। ममता, कामना, आसक्ति से पराधीनता बढ़ती है। अहंकृति से पराधीनता का विस्तार होता है। मिले हुए पदार्थों को, योग्यता को, सामर्थ्य को अपना मानने से मानव पराधीन तथा ममता अहंता से वह बँध जाता है।

14. अहंकार, मान की चाह में, धन की तथा सुखोपभोग की चाह में पराधीन हो जाता है।

15. अहंकार सदा भिखारी और दरिद्र बना रहता है।

16. जो अहंकार की बलि देता है, शक्ति को समर्पित देखता है। वही आत्मा अहंकार से मुक्त हो जाता है। तन्त्र साधना में अहंकार की बलि का विधान है। अब लोग बकरे की बलि चढ़ाते हैं। अधिक अकड़ना, में–में चिल्लाते रहना यही बकरे का प्रतीक है अहंकारी अकड़ता है बकवादी होता है।

17. **लगी आग संसार में झरि झरि परत अंगार।**
सन्त न होते जगत में तो जरि जात्यो संसार।।

20. नारी के भीतर गुण भी पुरूष से कई गुना अधिक प्रकट होते हैं और क्रोध, साहस, कामना, हिंसात्मक वृत्तियाँ आदि दुर्विचार भी कई गुना अधिक तीव्रता से प्रबल होते हैं।

21. **न कुछ हम हँस कर सीखे हैं, न कुछ हम रो के सीखे हैं।**
जो कुछ थोड़ा भी सीखे हैं, किसी के होकर सीखे हैं।।

22. वह शरीर, हाथ, पैर, वाणी, सौन्दर्य, शक्ति, सम्पत्ति आदि व्यर्थ है, जो किसी अधिकारी के काम नहीं आती।

23. जहाँ दैवी शक्तियों अथवा दिव्य भावों, विचारों का स्थान नहीं रहता वहाँ दुष्ट शक्तियाँ अथवा दुर्विचार स्वतः घुस जाते हैं। जिस भूमि में अच्छे बीजों को नहीं बोया जाता है वहाँ कांटेदार वृक्ष अपने आप ही उग आते हैं।

24. नारी को किसी न किसी के आश्रय में रहना हितप्रद है। स्वच्छन्द विचरना संकट में डालना है। शास्त्र मर्यादा के विरूद्ध है।

25. कोई कहीं भी जाये वही संसार सभी ओर होगा और अपना ही अशान्त दोषी मन एकान्त में भी कुछ समय बाद अशान्त बनायेगा।

26. किसी व्यक्ति के विषय में, स्थान के विषय में कल्पना का चित्र बना लेना अपनी कृति है लेकिन प्रत्यक्ष जाकर देखना कुछ और

ही परिणाम लाता है।

27. जो व्यक्ति गीता की, रामायण की अथवा अपने धर्मशास्त्र की गुरूजनों की बातें नहीं मानता वह मनमुखी होकर भ्रष्ट ही हो जाता है।

28. जितना अधिक मान की, आदर की, प्रतिष्ठा की अथवा अपने मन की अनुकूलता की चाह प्रबल होती है उतना ही अधिक अपमान का, अनादर का, प्रतिष्ठा का अथवा प्रतिकूलता का आघात दुखदाई होता है।

29. जो भलाई या बुराई बार बार दुहराई जाती है उसका अभ्यास बढ़ जाता है फिर आसानी से नहीं छूटता। अभ्यास के विपरीत अभ्यास ही करना होता है।

30. केवल गुण के अभ्यास से ही दोष का नाश नहीं होता। दान करने मात्र से लोभ नहीं मिटता। दूर चले जाने से मोह, क्रोध अभिमान नष्ट नहीं होते।

31. अहंकार आगे होने में प्रसन्न है। प्रेम पीछे रहकर सन्तुष्ट है। अहंकार जड़ वस्तु से सम्बन्धित है। प्रेम नित्य चेतन आत्मा का बोध है। अहंकार दुख में ले जाता है। प्रेम आनन्द की अनुभूति में शान्त रहता है। अहंकार मन बुद्धि को लेकर चलता है। प्रेम प्रज्ञा में ठहरकर देखता है। अहंकार शून्य होने पर प्रेमपूर्ण होता है।

32. **परमप्रेम पूरन दोउ भाई। मन मति चित अहमिति विसराई।।**

33. **दम्मी, द्रोही, स्वार्थी वादी मानी पाँच।**
यह खल नहिन सहि सके प्रबल प्रेम की आँच।।

34. **सबकी औषधि जगत में खल की औषधि नाहि।**
औषधि खल में परत ही चूर चूर हो जाहि।।

35. हमें यह समझाया गया है कि भूतकाल किसी का कितना ही

खराब क्यों न हो परन्तु वर्तमान सदा शुद्ध है।

36. संग से ईर्ष्या, द्वेषादि दोष प्रबल होते हैं परन्तु यह सदा रहने वाले अविनाशी नहीं है।

37. पाप, अपराध का आरम्भ और अन्त होता है। अन्त होने का जो क्षण है वहीं पर वर्तमान में जब कर्ता नहीं रहता तब निर्दोष तत्व, आत्मा, नित्य ज्ञान स्वरूप है वही दृष्टा है। कर्ता अहंकार बनता है, वही दोष का दुख भोगता है।

38. भूतकाल की स्मृति और भविष्य का चिन्तन ही निर्दोष वर्तमान तत्व के योगानुभूति में, अखण्ड आनन्द में, शाश्वत शान्ति में, आवरण बनता है।

39. ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधावेग, निन्दा, घृणा के विचार बादल की भाँति आनन्द को ढक लेते हैं, वह ज्ञान रूपी प्रकाश से ही छिन्न भिन्न होते हैं।

40. मुझे लोग साधु महात्मा पूज्य मानते हैं यह उनकी साधुता है, सरलता है पवित्रता है। मैं जैसा हूँ वह मुझे ही दीखता है। मुझे सर्वज्ञ ही जानता है।

41. भगवान का निर्णय है कि तुम अपना सुधार, उद्धार जब चाहोगी तभी होगा जो कुछ करने दोगे वही कोई कर सकेगा।

42. भगवान कहते हैं कि तुम सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ, तभी मैं तुम्हें बन्धनों से मुक्त कर सकूँगा। जब तक जीव संसार को पकड़े रहता है तब तक भगवान को नहीं पकड़ पाता। अहंकार ही त्यागी रागी बनता है, नर्क स्वर्ग का भोगी होता है।

43. सूखे गोले में गरी ज्यों की त्यों निकल आती है। गीली गरी को निकालने में बहुत कष्ट होता है क्योंकि वह चिपटी रहती है। कुछ बने रहना ही चिपटे रहना है।

44. अपनी मान्यता अपनी स्वीकृति ही पराधीन बनाती है। देह को, जाति को, नाम रूप को, पद उपाधि को अपना माने रहना पराधीन रहना है।

45. भगवान के मतानुसार मोही, अहंकारी, लोभी, कामी सदुपदेश को नहीं मान सकते। मूर्खता मूढ़ता को भी नहीं पहचान पाते।

46. भागवत में **नमोऽकिन्चन वित्राय** – जिनके भीतर अपना कुछ दीखता ही नहीं, अपने प्रभु को ही जो देखता है, उस अकिंचन के प्रभु ही परमधन हैं। वह सांसारिक वस्तुओं का लोभी, मोही, अभिमानी नहीं होता।

47. जिसको अपने दुख का कारण अपने दोष दीखने लगते हैं, वही द्वेष, ईर्ष्या, क्रोधादि के सन्ताप से बच पाता है।

पथिक

*****

अपने परम प्रभु की प्रेममयी आत्मा को नामरूप में स्मरण !

पढ़ने–सुनने से यह जाना जाता है कि :–

1. **गुरू के वचन प्रतीति न जेही।**
   सपनेहु सुलभ न सुख सिधि तेही।।

2. **जो श्रद्धा सम्बल रहित नहिं सन्तन कर साथ।**
   तिन कह मानस अगम अति जिनहित प्रिय रघुनाथ।।

3. श्रद्धालु ही अपने मनोमय कोष में मानस का अध्ययन कर सकता है, अश्रद्धालु नहीं।

4. जब बुद्धि किसी के व्यक्तित्व की, ज्ञान की थाह नहीं पाती, तब अहंकार समर्पित होता है तभी श्रद्धा जाग्रत होती है।

5. श्रद्धा से पाप उसी प्रकार छूट जाते हैं जिस प्रकार सांप से केचुल

छूट जाती है।

6. जहाँ दोष दर्शन होने लगता है, वहीं से श्रद्धा निर्बल होने लगती है। शरीर सदा अपवित्र है, दोषी है। ज्ञान स्वरूप आत्मा नित्य शुद्ध है।

7. श्रद्धा द्वारा ही ज्ञान स्वरूप गुरू से सम्बन्ध दृढ़ होता है।

8. भगवान के सामने होने पर भी यदि श्रद्धा न हो तब गुरूतत्व का दर्शन नहीं होता।

9. अश्रद्धा महापाप का प्रभाव है। श्रद्धा पुण्य का प्रभाव है। अश्रद्धालु जनों को भगवान भी नहीं समझा पाये। अश्रद्धावश दोषदर्शी लोगों का विनाश हुआ है, पर ज्ञान का प्रकाश नहीं हो सका।

10. जिस समय हित के वचन सुनने के लिये श्रद्धा न हो, जिस समय मन में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध का उद्वेग हो, जिस समय किसी के प्रति मोहासक्ति प्रबल हो, जिस समय लोभ तथा अभिमान की मात्रा अधिक बढ़ी हुई हो, उस समय सदुपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता।

11. जो पूर्ण दुखी हो, दीन हो जिसका श्रद्धा से अहंकार समर्पित हो रहा हो, अपनी कृतियों पर पश्चाताप हो, वही उपदेश एवं गुरू सन्देश का अधिकारी होता है।

12. मनुष्य के भीतर जो कुछ छिपा होता है वह संग से प्रकट हो जाता है। विद्वान लोग सावधान होकर उसी प्रकार अपना निरीक्षण करते हैं जिस प्रकार दर्पण में मुख देखा जाता है।

13. **'कोउ न काहू सुख दुख कर दाता'।** जीवन में सुख दुख माना हुआ है, संसार के सभी सम्बन्ध माने हुए हैं और परमात्मा से दूरी मानी हुई है। ज्ञान में जान लेने पर माने हुए सुख दुख का प्रभाव तथा सम्बन्धाशक्ति एवं परमात्मा से मानी हुई दूरी मिट जाती है। मानना तो अन्धे मन से होता है और जानना विवेकवती

बुद्धि से होता है। तमोगुणी, रजोगुणी, मोहान्ध बुद्धि यथार्थ दर्शी नहीं होती।

14. **होइ न विमल विवेक उर गुरू सन किये दुराव।**

15. **गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहि। आरत अधिकारी जहँ पावहि।।**

16. अनन्त ऐश्वर्य, असीम माधुर्य, अनुपम सौन्दर्य निधान भगवान भी अश्रद्धालु जनों का सुधार नहीं कर सके।

17. श्रद्धावान व्यक्ति, असाधु के प्रति भी श्रद्धा रखने के कारण अपना ही सुधार देखता रहता है लेकिन अश्रद्धालु व्यक्ति साधु की संगति में भी उन्नति नहीं कर पाता।

18. मनुष्य स्वयं ही अहंकार की कठोरता के कारण अपना शत्रु है और विनम्रता अर्थात अहंकार की सरलता के कारण अपना मित्र है।

19. जब मानव शरीर मिला है, बुद्धि में विद्या सहायक है, साथ ही गुरू सन्देश मिल रहा है, प्रभु की कृपा से सत्संग सुलभ हो रहा है तब–

    जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाय।
    सो कृत निन्दक मन्द मति आत्म हनन गति जाय।।
    सो परत्र दुख पावई सिर धुनि धुनि पछताय।
    कालहिं, कर्महिं, ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय।।

20. काम, क्रोध तथा भूख के वेग को जो रोक लेता है वह धीर वीर कहा जाता है। ऐसी वीरता धीरता भी कभी न कभी साधक में आती है।

    वरूण कुवेर सुरेश समीरा। रण सन्मुख धरि काहु न धीरा।।

21. नारी जीवन, रानी का जीवन, माता का जीवन, दिव्य जीवन।

22. **काहि न पावक जारि सक, का न समुद्र समाय।**
    का न करै अवला प्रबल, केहि जग काल न खाय।।

23. जिमि स्वतन्त्र ह्वो विगरहि नारी।

24. नारी को स्वतंत्र विचरने के लिए श्रुति शास्त्र में विरोध है।

25. नारी जब अपने मन पर, इन्द्रियों पर, अधिकार प्राप्त कर लेती है, तब रानी हो जाती है और रानी जब निष्काम प्रेम से, शक्ति, समय, योग्यता द्वारा सेवा करते हुए अपने आप में तृप्त रहकर माता पद में प्रतिष्ठित होती है, तब सबके लिये पूज्यास्पद हो जाती है।

26. किसी आश्रम में, दूर देश में कन्याकुमारी तथा हिमालय की गुफा में शान्ति नहीं मिल सकती। कुछ देर के लिये अशान्ति हट सकती है। कोई साधक जहाँ जायेगा वही तन मन संस्कार विचार साथ ही होंगे।

27. स्थान परिवर्तन से हृदय परिवर्तन नहीं होता। हृदय परिवर्तन से स्थान का प्रभाव नहीं पड़ता। प्रेम में ही हृदय परिवर्तन सम्भव है।

28. प्रेम में ही समस्त पुण्य बढ़ते हैं। अप्रेम में सारे पाप, अपराध बढ़ते हैं। प्रेम में ही हृदय परिवर्तन सम्भव है। राग द्वेष रहने तक त्याग, प्रेम, पूर्ण नहीं होता।

29. किसी न किसी प्रकार की चाह, प्रेम के ऊपर कालिमा बन जाती है। अहंकार और प्रेम का सदा विरोध रहता है।

30. अहंकार में कठोरता है, दरिद्रता है। प्रेम में कोमलता है, उदारता है। अहंकार लेने की भाषा जानता है। प्रेम देने के अवसर पकड़ता है। अहंकार जहाँ गिरता है वही तोड़ता है। प्रेम बरसता है और जोड़ता है। अहंकार अपने लिये और प्रेम सबके लिये जीता है। अहंकार में शोषण है, प्रेम में सेवा है। अहंकार अकड़ने

में सन्तुष्ट है, प्रेम झुकने में प्रसन्न है। अहंकार छाया छीनता है, प्रेम छाया देता है। अहंकार फल पाकर भी असन्तुष्ट है, प्रेम फल छोड़ कर तृप्त है।

पथिक

*****

परमेश्वर की नित्य चेतन स्वरूप आत्मा को स्मरण !

1. स्वामी रामतीर्थ ने कहा– कि दुनिया में ऐसा कोई स्थान नहीं हो सकता जहाँ कुछ न कुछ अनुकूल के साथ प्रतिकूल न हो। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिसमें अनेक गुणों के साथ कोई दोष न हो। सर्वांश निर्दोष केवल परमात्मा ही है, ऐसा सभी ज्ञानी कहते हैं।
2. अनुकूलता तभी सम्भव है, जब तुम्हारा अहंकार विनम्र, सहिष्णु, मान महत्वाकांक्षा का त्यागी और मान दान, अधिकार दान में पूर्ण उदार होगा।
3. दरिद्र अहंकार जहाँ रहेगा, वहीं मान के पीछे, अधिकार के पीछे, अथवा अनुराग के, राग के पीछे स्वर्ग को भी नर्क बना देगा और किसी की अपेक्षा न रह जाये, कोई कामना न रहे केवल निरभिमान पूर्वक सेवा में ही आनन्दित रहे तो मन के लिये यहीं स्वर्ग हो सकता है।
4. विवेक कहता है, प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करो। सेवा, दोषों का त्याग और निष्काम प्रेम के द्वारा ही प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग सम्भव है साथ ही अप्राप्त की कामना को छोड़ दो। जो नहीं मिले उसकी चाह छोड़ दो। जो मिल गया है उसमें सन्तुष्ट रहो। यदि शक्ति सेवा में व्यय होने लगे व आत्म साक्षात्कार अथवा भक्ति के साधन में लग जाये तब ईर्ष्या द्वेष, क्रोधादि सम्बन्धित व्यर्थ चिन्तन से मुक्ति मिल सकती है।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी आत्मन् !

ज्ञान दृष्टि खुलने पर तुम ज्ञान स्वरूप ही हो, परन्तु अपने स्वरूप के आगे देहरूप में अटके रहने के कारण जो नहीं हो वही अपने को मानकर अपने स्वरूप की महिमा को भूली हुई हो। हम सभी अविद्याग्रस्त हैं, भूले ही हैं। सन्त के वाक्यों से ही हम लोग अपने बन्धन के कारण को जान सकते हैं। तुम तो विदुषी देवी हो। बहुत सरलता से समझ सकती हो। रामायण का निर्णय है कि :–

कोउ न काहु दुख सुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।।

इस सत्य को सुनते पढ़ते हुए भी दुखी होकर अनेक लोग अपने भीतर के लोभ, मोह, अभिमान और कामादि दोषों को न देखकर दूसरों को दोषी ठहराते हैं, दूसरों को ही कोसते हैं और अपने भीतर ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध को बढ़ाते रहते हैं। कभी कभी तो गाँव के लोग ईश्वर को ही कोसते हैं। आपने भी स्त्रियों को कहीं कहीं कहते सुना होगा कि भगवान ने हमारा यह ले लिया। कोई कोई अपने घर के लोगों को पत्नि पति को, पिता पुत्र को, पुत्र पिता को दुखदाता मानकर ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, निन्दा, घृणा आदि पाप में से कोई न कोई पाप करते ही रहते हैं।

काम क्रोध की अग्नि में, जलत सकल संसार।
विरले बचते सन्त जन केवल शान्ति आधार।।

धन, मान, भोग चाहने वाले तो अशान्ति से बच ही नहीं पाते, दूसरों को देने वाले ही बच पाते हैं। मनुष्य के भीतर सूक्ष्म शरीर में पशु शक्ति, राक्षसी शक्ति रहा करती है। उसी के द्वारा बहुत शक्ति नष्ट होती है। शरीर के भीतर काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष की ग्रन्थियाँ कहीं बहुत मोटी और कहीं कहीं घटते घटते बहुत छोटी छोटी रहा करती हैं। वही ग्रन्थियाँ गर्मी पाकर आघात होने पर फूल जाती हैं, पिघलती हैं। उन ग्रन्थियों से एक प्रकार का विष निकलता है वही शरीर को विषाक्त

बना देता है। जितनी बार क्रोध आता है उतनी ही बार विष एकत्रित होता है। लोभ मोह की प्रबलता में बात व्याधि बढ़ती है। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष की अधिकता में रक्त दोष, कैन्सर आदि दोष बढ़ते हैं, चर्म रोग भी होते हैं। भीतर ही भीतर स्नायु केन्द्र में गर्मी से पिघल पिघल कर विष फैलता है। सूक्ष्म शरीर के रंग भी गुण दोष के अनुसार भिन्न भिन्न काले, गहरे नीले, भूरे, मटमैले, लाल, कत्थई रंग के होते हैं और सद्‌गुण की प्रधानता में हल्के नीले, पीले, हरे, गुलाबी, सुनहले रंगों की प्रधानता होती है। दो कुत्ते क्रोध में होते हैं तब उनके थूक का परीक्षण किया गया तो विष की मात्रा बढ़ जाती है और जब दो प्रेमी प्रेम से मिलते हैं तब उनके अधरों में अमृत रस की प्रधानता होती है । धीरे–धीरे या फिर विशेष सावधान रहकर दोषों से सावधान रहें तो गुण बढ़ने पर दोष घट जाते हैं। पुण्य बढ़ने पर पाप कट जाते हैं। यदि पाप बार बार बनते गए तो बढ़े हुए पुण्य एक दिन के पाप से तहस नहस हो जाते हैं। महीने भर की संचित शान्ति तीन मिनट के क्रोधावेग से बिखर जाती है। आसुरी वृत्तियों के आक्रमण से देवता इधर उधर छिप जाते हैं। यदि वाणी का वेग न रूका तो महीनों, वर्षों और दूसरी पीढ़ियों तक शत्रुता का द्वेष का सम्बन्ध बन जाता है। तभी तो कहा गया है कि मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का रचयिता है। अहंकार जब तक धन, मान, भोग सुख का भिखारी है और दरिद्र की भाँति अतृप्त है तब तक भजन, सेवा, त्याग, तप कुछ भी पूर्ण हो ही नहीं सकते। दूसरे जन्म तक पहले जन्मों के दोष प्रकट होते हैं।

संगति से बहुत सावधान रहो, जिस संगति से अशान्ति हो, दोष बढ़े, कलह, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष हो वह संगत छोड़ देना चाहिये। जिस संगति से सद्‌गुणों की वृद्धि हो, दोष घटते जाएं, प्रेम निष्काम होता जाये वही संग करना चाहिये। चलते चलते यात्रा बदल देनी चाहिये।

मुझे समझाया गया है कि जब तुम किसी की सेवा करो तो

उसके बदले में मान न चाहो, प्यार न चाहो, अधिकार न चाहो, पुण्य बन जायेगा। यदि कोई बदले में कीमत ले ली, तब लोभ, मोह, अभिमान बढ़ेगा। मुझे समझाया गया है कि तुम अपनी ही कामना के कारण, पूर्ति न होने से दुखी अशान्त होते रहोगे। सन्त कहते हैं कि तुम ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध निन्दा, घृणा के द्वारा न अपना हित साध सकोगे न दूसरों का। व्यर्थ ही समय शक्ति बरबाद होती है। अधिकार का गर्व ही ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध करा लेता है। पाप पर विजय के लिए पुण्य बढ़ाओ। पुण्य बढ़ाने के लिए पापों से बचो। पाप प्रवृत्ति से बची हुई शक्ति पुण्य बढ़ाने में सहायक होगी। पुण्य के प्रताप से प्रेम पूर्वक सेवा करो। सेवा की कीमत न चाहो। सेवा में सुखासक्ति बाधा डालेगी। सेवा करने का, दान का गर्व न करो। गर्व होगा तभी अधिकार की मांग होगी, तभी मन की पूर्ति न होने से क्रोध आयेगा, यह तो महा दरिद्रता है, घोर पाप बन जाते हैं। दरिद्र ही पाप करता है और पाप के कारण पुनः दरिद्र होता है। हमें बताया गया है कि तुम किसी के आगे धन के लिए, मान के लिए, अधिकार के लिए भिखारी न बनो, दरिद्र न बनो। जो पुण्य हीन है वही भिखारी दरिद्र होते हैं। पुण्यवान को बिना मांगे ही सब कुछ मिला करता है, न मिले तो समझ लो कि मैं अधिकारी नहीं हूँ। जिसका अधिकारी हूँ वह मिला है। जिससे पुण्य की रक्षा हो, आनन्द की रक्षा हो, पवित्रता की रक्षा हो, वही सद्‌बुद्धि है। जिससे सेवा का अभिमान बढ़े, लोभ बढ़े, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, कलह, निन्दा घृणा से जो न बचा सके वही दुर्बुद्धि है। हमें समझाया गया है कि कभी भूल हो जाये, पाप अपराध बन जाये उसे पुनः नहीं दुहराने के लिए सावधान रहो। आदत के कारण, असावधानी के कारण और सुखासक्ति के कारण, संयोग, भोग तथा इच्छापूर्ति की आतुरता के कारण पाप अपराध बन जाते हैं। जिस संगति से दोषों का त्याग न हो, दान न हो, अभिमान, लोभ बढ़े उसे ही अशुभ समझो, उसे छोड़ दो। हमें यह भी समझाया गया है कि हमारा मन ही नर्क को स्वर्ग और स्वर्ग को नर्क बना देता है। दैवी गुणों से हृदय में शीतलता बढ़ती है और ईर्ष्या, द्वेष,

क्रोधादि आसुरी वृत्तियों से हृदय में सन्ताप बढ़ता है। यह भी समझाया गया है कि अपने कारण किसी को दुख हो अशान्ति हो तो उस संग को छोड़ देना चाहिये। जिस संग से किसी में उदारता, सरलता, सहनशीलता, ज्ञान आदि सद्‌गुण बढ़ें उसी की संगति करना चाहिये। मुझे जो समझाया गया है उसे तुम भी समझ सको तब बहुत हित होगा। मेरे सामने सैकड़ों व्यक्ति हैं वह अपने प्रेम के कारण, अपनी उदारता के कारण सन्तुष्ट है, प्रसन्न हैं, सेवापरायण हैं परन्तु जिसमें नम्रता, उदारता, सहिष्णुता एवं प्रेम की और निष्कामता की कमी है वही अशान्त, दुखी हो जाते हैं। मैं किसी को कुछ दे नहीं सकता, ज्ञान में दिखाना चाहता हूँ परन्तु सब एक समान दृष्टि वाले नहीं है।

पथिक

*****

नाम रूप में प्रकाशित परम प्रेमास्पद परमात्मदेव को प्रणाम्!

यह तो आप भी मानती होगी कि मनुष्य में जो मन है यह लाखों जन्मों का पुराना है। मन के भीतर जन्मान्तरों के पशु देहों के संस्कार हैं वही मानवता के विकास एवं दिव्यता के अवतरण में बाधक बनते हैं। गीता के निर्णयानुसार मनुष्य का मन शत्रुवत और मित्रवत काम करता है। हम में, आप में, अनेकों जन्मों की यात्रा से बुद्धि इतनी विकसित हो गई है कि अपना निरीक्षण स्वयं कर सकते हैं। हम और आप स्वयं ही अपने नेता और गुरू हो सकते हैं। स्वतंत्रता का यही अर्थ है कि हम और आप जैसे पापी या पुण्यवान होना चाहें वैसे हो सकते हैं, हो रहे हैं। विवेक के आदर की आवश्यकता है। मनुष्य के मन में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि विकार जितनी अधिक देर ठहरते हैं उतना भीतर विष की ग्रन्थियाँ बनती जाती हैं। वही शरीर को रोगी बना देती हैं। मानसविद् परिणामदर्शी जनों ने तो मोह की, लोभ की, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि की प्रबलता में भिन्न भिन्न रोगों का भी निर्णय दे दिया है और वह यथार्थ देखा जाता है। बाराबंकी में सीतापुर के एक भक्त बता रहे थे कि

उनके भाई साठ साल से रोग ग्रस्त हैं, वे मेरे सर्वप्रथम श्रद्धालु थे, जैसे जैसे श्रद्धालु बढ़ते गये उनके अधिकार में हिस्सा बटांने लगे, उनके मन में ईर्ष्या बढ़ने लगी, बीच–बीच में बहुत उत्तेजित होते रहे। फिर शान्त होते रहे लम्बी कथा है। पाली भी प्रति वर्ष जाते रहे।

कुछ श्रद्धा, कुछ दुष्टता, कुछ संशय, कुछ ज्ञान।
घर का रहा न घाट का, ज्यों धोबी का श्वान।।

कवि ने ठीक ही कहा है। मनोविकार के कारण उनकी बीमारी इतनी बढ़ गई कि दो तीन साल से विस्तर में पड़े रहते हैं, अब तो बहुत ही दुर्दशा है, बहुत दुखी हैं। पश्चाताप भी करते हैं। एक दिन तुलसीराम अपनी तरफ से उन्हें देखने गये बेचारे पैरों में गिरकर रोने लगे। एक सन्त के वाक्य मुझे स्मरण हैं कि अपने द्वारा यदि अपराध बना है तो क्षमा मांग लो इससे क्षमा याचक संघर्ष से बच जाता है और क्षमा करने वाला भयानक हिंसात्मक प्रवृत्तियों से बच जाता है। अब सावधान हो जाओ, अपने में ही इस महात्मा के होने का विश्वास करो इसी महात्मा की शरण लो। अब कहीं बाहर न भटको। इस देह रूपी मन्दिर में हृदय सिंहासन में इस नित्य, शुद्ध, बुद्ध, चेतन स्वरूप महात्मा का वास स्थान है, इसी में श्रद्धा प्रेम दृढ़ करो, प्रतीक्षा करो। उसकी दया कृपा का अनुभव होगा। गीता रामायण उपनिषदों में यही संकेत है। हम और आप असत् को जानते हैं परन्तु असत् का त्याग नहीं कर पाते फिर भी अपने को सत्संगी मानते हैं। अपने हाथ, पैर तथा इन्द्रियों पर, मन पर अधिकार नहीं है, यह जानते हुए भी दूसरों पर अपना अधिकार जमाते हैं, इस मूर्खता को अब देख रहे हैं।

यदि अपना अधिकार न मानते तो हमें क्रोध आता ही नहीं। क्रोध रहित होने पर ही अपने कर्तव्य की, स्वरूप की एवं अपने प्रभु की स्मृति रहती है। हमने आपने कितनी बार सुना है, पढ़ा है कि वस्तु व्यक्ति को सुखदाता न मानो, तभी राग का नाश होगा। जब राग न रहेगा तभी द्वेष न होगा। राग द्वेष न रहने पर ही त्याग प्रेम की पूर्णता

होती है। परन्तु हम रागी द्वेषी बन रहे हैं। सत्संग में लेश मात्र का श्रम नहीं है फिर भी हम असत् संगी बने हुए हैं।

हमें और आपको विचार करना चाहिये कि हम अशान्त क्यों है?दुखी क्यों है?क्योंकि ममता, आसक्ति, कामना से बुद्धि अन्धी हो रही है। हम सभी को धन, भूमि, सामान भले ही न दे सकें परन्तु प्रेम तो दे ही सकते हैं। यह तभी सम्भव है जब किसी को दुखदाता न माने। दुखदाता मानते ही हम अन्धे बहरे की भाँति गरजने, बरसने लगते हैं। हमें और आपको यह स्मरण रखना चाहिये :–

1. जीवन में जो कुछ मिला है वह अपना नहीं है।
2. सुख या दुख देने वाला दूसरा कोई नहीं है।
3. आसक्ति, कामना का त्याग ही विवेक का आदर है।
4. हम सबका वर्तमान विकास के लिये है चाहे सुखमय है या दुखमय। अनेक लोग हमें मान देते हैं, इससे पुण्य घटते हैं। कोई हमारा अपमान करता है, तब पाप घटते हैं। काम, क्रोधादि से जीव का नाश नहीं होता, बुद्धि नष्ट होने पर नाश होता है। यही गीता का मत है। हमारी आपकी बुद्धि शुद्ध रहे यही आत्म देव से प्रार्थना है।

पथिक

*****

नित्यानन्द स्वरूप परमात्मा के अविनाशी नित्य चेतन स्वरूप अंश को प्रिय नाम रूप में स्मरण!

हमें स्मरण ही नहीं था कि जीवन की जब यात्रा का आरम्भ हुआ था, तब स्वयं से हुआ था, अब स्मरण रखना है कि यात्रा का अन्त जब होगा तब जीवन के परमाश्रय में ही होगा। संसार में कभी भी, कहीं भी विश्राम नहीं मिलेगा, परम में ही परम विश्राम मिलेगा।

जो दुख को स्वीकार कर ले, उसे कैसे कोई दुख देगा?जो गाली को स्वीकार कर लेगा उसका अपमान कौन कर सकेगा?जो हार को स्वीकार कर लेगा, उसे कौन हरा पायेगा?जो अशान्ति को स्वीकार करेगा, उसे शान्ति का प्रयत्न न करना होगा। स्वीकृति ही नियति का आदेश है। अस्वीकृति नियति अर्थात भगवद्विधान का विरोध है।

रंग महफिल जमा गया कोई, बात बिगड़ी बना गया कोई।
रस्में उलफत सिखा गया कोई, बज्में हस्ती बिछा गया कोई।।
या खुदा मस्त मस्त नजरों से, जो न पी थी पिला गया कोई।
ताकयामत किसी तरह न बुझे, आग ऐसी लगा गया कोई।।
दिल की बस्ती उजाड़ सी क्यों है, क्या यहाँ से चला गया कोई।
बाद मुद्दत गले लगा के मुझे, हँसते हँसते रूला गया कोई।।

तुम्हें श्रुति वाक्यों का स्मरण दिला रहा हूँ।

याज्ञवल्क्य उपनिषद में बताया गया है कि कोई पति हो, पिता हो, बन्धु हो या पत्नी हो पुत्र हो, गुरू हो या शिष्य हो, कोई भी किसी को चाहता है उसके लिए नहीं चाहता। पत्नी अपने लिए ही पति को चाहती है। माता पिता अपने लिए ही संतान को चाहते हैं। तुम किसी को आदर प्रीति करती हो तो अपनी ही तृप्ति सन्तुष्टि के लिए करती हो। तुम्हें कोई चाहता है तो अपने लिये ही चाहता है, वह तुम्हारे लिये तुम्हें नहीं चाहता, जिसे तुमसे कुछ नहीं चाहिये वह तुम्हारा त्याग बहुत सरलता से कर देगा। जिससे तुम कुछ नहीं चाहती हो, उसका त्याग तुम बहुत आसानी से कर दोगी। यदि किसी का त्याग करने में तुम्हें कठिनाई है, तब तो तुम्हारे मन में अवश्य ही कोई चाह होना ही चाहिये। तुम्हें कुछ न कुछ सेवा करने की कामना है, कभी कुछ दान करने का उत्साह है, यदि कुछ भी चाह होती है तभी उसकी पूर्ति से सुख होता है और अपूर्ति से दुख होता है। तुम व्यर्थ ही किसी व्यक्ति के कारण अशान्त दुखी होती हो, यह अविवेक है। तुम तो अपने सम्बन्धितजनों को यथोचित बहुत कुछ दे सकती हो। देने के अवसर

खोजते रहना चाहिये, कुछ पाने की, कुछ लेने की अर्थात किसी के द्वारा मान पाने की अथवा मन की रूचि पूर्ति करने की आशा ही छोड़ देनी चाहिये।

तुम दक्षिण, उत्तर, पश्चिम जाओगी इससे पुण्य क्षीण होंगे, पैदल चल कर जाओ, तब तपस्या होगी। जो रेल में खर्च होगा, वह गरीब दुखी की सेवा में लगा दो, इससे पुण्य बढ़ेगा। खर्च कर दोगी तब पुण्य घट जायेगा, अशान्ति नहीं मिटेगी। ज्ञान में परिणाम देखो। जिस समय से, शक्ति से, सम्पत्ति से सेवा बन जाये, वही सार्थक है। सेवा न बनकर मन की इच्छा पूर्ति में सब निरर्थक है। मन ऊबे तो ऊबने दो, घुटने दो, शरीर को कष्ट होता है तब भोगना ही पड़ता है, भोग से भागते ही कष्ट दूर हो जाता है। मन की पूर्ति न करो, इसे सूखने दो। रोगी कमरा बन्द कर लेटा रहता है तुम भी किसी से न मिल कर लेटी रहो बाहर निकल कर अभी तक क्या मिला। इच्छाओं की निवृत्ति से शान्ति मिलती है, पूर्ति से नहीं मिलती। दूसरों की पूर्ति कर दो, जो धर्मयुक्त हो। अपनी पूर्ति न चाहो। अभी तक जो पूर्ति हुई उसमें शक्ति, सम्पत्ति घटी, मिला कुछ नहीं। अहंकार का पक्ष न लो, इसका अपमान होने दो, इसकी दरिद्रता बनी ही रहेगी। तुम प्रेम से, ज्ञान से, गुणों से तृप्त रहो। धन से, मान से, भोग से, तृप्ति से आशा न करो। भीड़ है समय निकाल कर जल्दी में लिख रहा हूँ ज्ञान रूप में अभी तुमसे मिला हूँ। शरीर से कभी योग नहीं होता, भोग ही होता है। आत्मा में ही प्रेम हो, तृप्ति हो, सन्तुष्टि हो, यह भगवान का आदेश है।

पथिक

*****

परम प्रियतम परमात्मा की स्नेहमयी आत्मा को स्मरण!

तुमने अपने मन के उद्वेग को रोक कर वहीं रहने का

निश्चय किया है, यह बहुत ही शुभ है। समय व शक्ति को व्यर्थ भ्रमण में, व्यर्थ चिन्तन में, व्यर्थ वार्ता में, तथा क्रोधादि वेगों में नष्ट करना अपने प्रति शत्रुता है और सेवा में, स्वाध्याय में, परमात्मा के स्मरण में सार्थक करना अपने प्रति मित्रता है।

हम लोग इस शरीर में अकेले नहीं रहते, पहले जन्मों में जिन जीवों की सेवा बाकी है और जिन जीवों को सताया है, उनके अधिकार का हनन किया है, जिन पशुओं को मारा है जिन्हें भूखे प्यासे रखकर काम लिया है वे भी सूक्ष्म देह से अपना बदला लेते हैं और देते हैं। हमारे भीतर इन्हीं सम्बन्धों के कारण कभी पशु वृत्तियाँ, कभी आसुरी तथा कभी दैवी वृत्तियाँ प्रबल होकर शुभ और कभी अशुभ कार्य की प्रेरक बनती हैं। इसीलिए भगवान ने साधकों को सावधान किया है कि अपने सन्चित पुण्यों को कामनाओं की पूर्ति में नष्ट न करो और नवीन पुण्यों को बढ़ाते चलो। इसी प्रकार पहले के पापों को प्रतिकूलताओं के रूप में प्रकट होने पर भोग कर नष्ट कर दो लेकिन नये पापों को बढ़ने मत दो, अनुकूलता के भोग से पुण्य नष्ट होते हैं, प्रतिकूलता के भोग से पाप नष्ट होते हैं। दूसरों को धर्म मर्यादापूर्वक अनुकूलता का संयोग देते रहने से पुण्य बढ़ते हैं और प्रतिकूलता बढ़ाते हुये कष्ट पहुँचाते रहने पर पाप बढ़ते हैं। अपने सुख के लिए मनुष्य हो या पशु पक्षी को भी कष्ट न देना चाहिए।

विवेकी साधक को सावधान रहकर पुण्य से सुलभ अनुकूलता का भोग भी निर्वाह मात्र के लिए करना चाहिये। जिस अनुकूलता के लिए क्रोध, कलह, हिंसा करनी पड़े उसका पक्ष ही छोड़ देना चाहिये। एक व्यक्ति का बीड़ी पीना हमारे प्रतिकूल है, हमें उसे मना न करके स्वयं ही उठ जाना चाहिए, उसे उठाने के लिए संघर्ष नहीं करना चाहिये। लेकिन जब कोई मेरे सामान को लेकर भागना चाहता हो तब अवश्य समय शक्ति की अनुकूलता देखकर विरोध करना अधर्म नहीं है। लेकिन जब कोई चोरी कर ले जाये तब अपने हिस्से का न मानकर

सन्तोष करना चाहिए। और इतना सामान धन संग्रह न करना चाहिये जिसकी कमी से दूसरे श्रमी जन दुखी होते रहते हैं। तुम अपने दोषों को देख रही हो, इसीलिए शान्त हो, विनम्र हो, जब दूसरों के दोषों को देखती हो, तब अशान्त हो जाती हो। दुखी होने पर अपने ही भीतर प्रकट होने वाले लोभ, मोह, अभिमान, काम को देखना चाहिये, क्योंकि इन्हीं दोषों के कारण हानि का, अपमान का, वियोग का, अभाव का कष्ट होता है और तभी ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि विकारों का विष बढ़कर बुद्धि को आच्छादित कर देता है। अपने भीतर अहंकार के दोषों को देखना और दूसरों के भीतर जो गुण दीखें उन्हें भगवान के गुण समझ कर अपने भीतर भगवान के दिव्य गुणों को बढ़ाना बहुत ही शुभ है।

हम लोगों को जिस अवसर पर क्रोध आता है उसी समय क्षमा का आश्रय लिया जा सकता है। जिस प्रसंग पर ईर्ष्या, द्वेष प्रबल होते हैं, उसी समय विनम्रतापूर्वक करूणा, प्रेम, सहिष्णुता का आश्रय लेकर शान्ति पूर्वक कर्तव्य का निर्णय लिया जा सकता है। प्रेम से ही अहंकार की कठोरता पिघलती है, नम्रता में ही सहिष्णुता बढ़ती है। श्रद्धा में ही ज्ञान को अनावृत्त किया जा सकता है। शुभ सुन्दर के दान से ही पुण्य बढ़ाये जा सकते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, निन्दा, घृणा से पाप बढ़ते हैं।

जिस शक्ति, जिस वाणी से, जिस लोभी, मोही, कामी, अभिमानी मन से पाप बढ़ते हैं उसी उदार विवेकी, विनम्र, श्रद्धालु मन से पुण्य ही पुण्य बढ़ते है। जो अपना शत्रु है वह पाप बढ़ाता है, पुण्य घटाता है। जो अपना मित्र होता है वह पाप घटाता है, पुण्य बढ़ाता है। तुम अपने मित्र ही होकर सन्तोष, सहिष्णुता, नम्रता, उदारता, प्रसन्नता, श्रद्धा, विवेक का ही आश्रय लिए रहो। किसी को अपना शत्रु न मानो, विरोधी न मानो, दुखदाता न मानो। जब कभी पशुवृत्ति भीतर आक्रमण करे तब नम्र होकर उसे स्वीकार कर लो, कह दो कि आओ तुम्हारा स्वागत है। तुम मेरे ऊपर जो आघात करना हो कर लो, दुख

देना हो, दे दो, परन्तु तुम सदा नहीं रह सकते। कुछ ही समय तक तुम्हारा प्रभाव रह सकता है, तुम शाश्वत नहीं हो, अविनाशी नहीं हो।

समस्त पाप अज्ञान में अहंकार द्वारा बनते हैं। अज्ञान में ही अहंकार लोभी तथा सुखासक्त और प्रतिकूलता में क्रोधी बनता है। अपने स्वरूप को न जानकर देह के रूप को अपना रूप मानते रहना अज्ञान है। अज्ञानी को दान के तथा तप के एवं सेवा के बदले में चाहे जितना धन, मान, भोग, सुखों की अनुकूलता मिलती रहे फिर भी शान्ति सुलभ न होगी। ज्ञान से सत् असत अथवा पदार्थ और परमात्मा को जानकर पदार्थों से विरक्त और परमात्मा में ही पूर्ण अनुरक्त रहे बिना दुख नहीं मिटेंगे। सुख तो मिलेगा परन्तु उसका अन्त दुख में ही होगा। आप लोगों को अशान्ति मिटाने के लिये, आनन्द की अनुभूति के लिए, घर भूमि, आदि कुछ नहीं छोड़ना है। केवल मिले हुए के प्रति अहंता, ममता को छोड़ देना होगा। अहंता, ममता, आसक्ति, कामना छोड़ने के लिए केवल अपना मानना छोड़ना होता है। जो कुछ मिला है या आगे मिलेगा, वह कुछ भी अपना नहीं है, आगे भी अपना नहीं हो सकेगा। जो कुछ साथ है, वह ऐसे दाता का है कि उसने दिया है पर अपने को प्रकट नहीं किया, इसीलिये जो कुछ मिला है उसका मालिक न दीखने के कारण अपना ही मालूम देता है।

आप लोगों की समझ ठीक होगी, तब अपना कुछ दीखेगा ही नहीं, जिसका कोई मालिक पहले से ही मौजूद है उसके मालिक आप लोग बनेंगे ही नहीं। तब दाता प्रभु से ही आत्मीयता होगी। जो जिज्ञासु ज्ञान में देखने लगता है वह यही मनन करता है कि जो कुछ भी संसार में मिला है वह अपना नहीं है सब कुछ परम प्रभु का ही है। वह अपना प्रभु स्वयं आनन्दमय है, शान्तिमय है, पूर्ण ज्ञान तथा पूर्ण प्रेममय है, तब हमें अब कुछ भी नहीं चाहिये, हम उसी प्रभु के हैं। यह सारा संसार प्रभु का ही है।

उमा जे राम चरण रत, विगत काम मद क्रोध।

निज प्रभुमय देखहिं जगत, कासन करहिं विरोध।।

आप लोग जब तक ज्ञान विवेक में नहीं जागेंगे, तब तक मोह, लोभ, अभिमान नहीं मिटेगा और इनके मिटे बिना दुख का, अशान्ति का, बन्धनों का, भय एवं चिन्ता का अन्त नहीं होगा। कुछ दिनों में ही शक्ति घटने लगेगी, बुढ़ापा आ जायेगा, तब जिसको पाकर वाह वाह निकलती है उसी की आसक्ति हाय हाय करायेगी। इसीलिए भीतर ज्ञान शक्ति को जगाते बढ़ाते हुए जीवन का सुन्दर निर्माण करो।

मनुष्य में जितनी अधिक बौद्धिक जड़ता होती है उतनी ही असत् अनित्य पदार्थों में ममता होती है। अपनी स्वीकृति तथा मान्यता ही बन्धन का हेतु है। मन से मान लेना बालक के लिए सरल है, लेकिन माने हुए को यथार्थ में जान लेना आप लोगों के लिए कठिन है। जान लो कि सदा रहने वाला क्या है?सदा न रहने वाला अनित्य विनाशी क्या क्या है। यदि पथिक आप लोगों के मध्य में आ जाता तो यही सब कहता। सुन सुनकर अपने को जानना है। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, मोह, लोभ, अभिमान से बचकर सेवा द्वारा दोषों का त्याग करके प्रेम को निष्काम कर लेना ही साधना की सिद्धि है।

पथिक

*****

भिन्न–भिन्न नाम रूपों में अपने जीवन में पूर्णता चाहने वाली श्रद्धालु भक्तों को अपने सन्तोष के लिए सादर स्मरण करते हुए सभी में अविनाशी परमात्मा को नमस्कार है।

इस पथिक ने इतना अधिक लिख दिया है पुस्तकों में, जिसे जिज्ञासु जन ध्यान देकर पढ़ नहीं पाते और इस पथिक का सन्देश निर्देश पढ़ने की अपेक्षा, इसके द्वारा सुनने का मूल्य अधिक बढ़ाते हैं। करोड़ों व्यक्ति देखे हुए को तथा सुने हुये को मन से पकड़ लेने के अभ्यासी बने हुये हैं, लेकिन बुद्धि से विचारपूर्वक पकड़े हुये मिथ्या नाम

रूपों को तथा माने हुये सुख अथवा सुखद प्रतीत होने वाले सम्बन्धित पदार्थों एवं सम्बन्धियों को देख नहीं पाते। जीवन भर मिली हुई देहों को तथा वस्तुओं को प्रेम में भर कर मोही लोभी बने रहकर अन्त में संसार के पदार्थों को लेकर नहीं बल्कि लोभ, मोह, अभिमान को साथ लेकर दूसरे जन्म के लिए यात्रा करते हैं। अब देख सको तो आप लोग अपने को देखो जिस वस्तु को, व्यक्ति को, देह को अपनी मानती हो, उस पर स्वतंत्र अधिकार नहीं है। तुम सदा कुछ भी अपने साथ रख न सकोगी और न सदा किसी के साथ रह सकोगी। जिसके साथ सुख मान रही हो उसी के पीछे दुखी होना पड़ेगा। सुख चाहते हुए भी छिन जायेगा। और दुख न चाहते हुये भी आ ही जायेगा। मानने की आदत पड़ चुकी है, उसके विपरीत अभ्यास दृढ़ करना होगा। जो लोभ या क्रोध अथवा अभिमान जितनी बार दुहराया जाता है उतना ही अभ्यास बढ़ जाता है। जो लोग क्षमा को, नम्रता को, मान को अथवा धन को, वस्तु को दान को बार बार दुहराते हैं उन्हें उसी की आदत बन जाती है।

आप लोग विदुषी हो इसलिए प्रत्येक कृत्य पर विचार करो, उसके तात्कालिक प्रभाव को देखो और दृष्टि से उसके आने वाले परिणाम को देखो। आप लोग अपने मित्र हो तो उन कृत्यों को न दुहराओ जिनसे कि अशान्त दुखी होती हो। दुखी होकर अपने भीतर रहने वाले दुखदाता दोष को जानो, किसी अन्य को दुखदाता मानने की मूर्खता करके शत्रु न बनो। अपना मित्र बने रहना बहुत बड़ी घटना है, सर्वोपरि सफलता है। जो अपने से दुखी होकर दूसरों को दुखदाता मानता है वह महामूर्ख है। धनमद, रूपमद, जवानी का मद, विद्या का मद, पदाधिकार का मद मनुष्य की बुद्धि को मूर्छित कर देता है। मूर्छित बुद्धि वाला मूर्ख सदा अहंकार को ही पुष्ट करता है, मोही, लोभी, अभिमानी सदा सुख का कामी बना रहता है। आप लोग इस दरिद्र भिखारी अंहकार को ज्ञान में देख सको तो विद्या सार्थक हो जाए। भगवान कृष्ण का निर्णय है कि जो अहंकार अपने ज्ञान के गर्व में किसी

गुरू सन्देश को नहीं सुनता, समझता उसे ही विनाश का दुख भोगना पड़ता है।

यदि आप सांसारिक सुखोपभोग ही चाहती हो, इसके लिये धन, संयोग, सम्मान पद, अधिकार की तृष्णा प्रबल है। तब सजग रहकर प्राप्त शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता के द्वारा दूसरों की सेवा करते हुए अधिक से अधिक पुण्य बढ़ाती जाओ, सदा पाप से बचती रहो। अपने मन के अनुसार सुखी रहने के लिए दूसरों को दुख पहुँचाना पाप है। जिससे लोभ, मोह, अभिमान, ईर्ष्या, कलह, क्रोध बढ़े वही पाप है। जिससे सद्‌गुणों की वृद्धि हो वही पुण्य है। लाखों विद्वान, विदुषी विद्या द्वारा पाप से नहीं बच पाते और पुण्यों का उपार्जन करने में प्रमादी बने रहते हैं, वही अन्त में घोर अशान्त होते हैं। आप लोग भले ही मन्दिरों में, तीर्थों में दर्शन पूजा पाठ करती रहो, लेकिन अपने व्यवहार क्षेत्र में यदि पाप से न बच पाई और पुण्यों का संचय न कर सकी तो याद रखना अशान्ति से, दुख से मुक्त होना सम्भव न होगा। समस्त पापों से बचते रहना और पुण्यों का सन्चय करना सभी सन्त महात्माओं की शिक्षा है। तन से पाप, वाणी से पाप, और मन से पाप प्रायः बनते ही रहते है।

प्रायः प्रत्येक मानव परस्पर एक दूसरे से कभी धन चाहता है, कभी किसी प्रकार की मनोभिलिषित सुखद सामग्री चाहता है, कभी मान प्यार अथवा अधिकार चाहता है, कभी समीप रह कर सेवा करना चाहता है या कभी सेवा लेना चाहता है। इस प्रकार जब कभी चाह की पूर्ति नहीं होती तभी दुखी होता है और जब मनोकामना की पूर्ति में किसी को बाधक देखता है तभी ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, प्रतिस्पर्धा से अशान्त सन्तापित होता है। जिस संग से दोष बढ़ते जाएँ वह संग त्याग देना चाहिए। जिससे दोषों का त्याग, गुणों का विकास हो, वही संग उत्तम है। जिस संग से अपने दोषों का ज्ञान हो और उन दोषों के त्याग की युक्तियाँ मिलती हों, वह संग करते रहना चाहिए।

सम्यक दर्शी सन्त कहते हैं कि कोई अन्य न सुखदाता है, न दुखदाता है। अपने अपने कर्मों का फल भोग सामने आता है उसी में अज्ञानी कहीं सुख और कहीं दुख मान लेता है। मान लेने से सुखदाता के प्रति रागी व मोही बनता है और दुखदाता मानकर द्वेषी बनता है। यह राग–द्वेष ही सभी बुराईयों का तथा अनर्थ का मूल है। इसी का त्याग और सत्य से प्रेम सभी भलाई का मूल है। अहंकार की कठोरता प्रेम से ही पिघलती है, गलती है। अप्रेम की परिधि में ही किसी भी दोष क I
आधिपत्य रहा करता है अहंकार भले ही स्वीकार न करे प्रसन्न रहो, स्वस्थ्य होकर विचारो तुम्हीं महात्मा हो।

पथिक

*****

परमात्मने नमः

तुम अपना अध्ययन करो। विद्या का दुरूपयोग न करके सत्य के लिए उपयोग करो।

1. तमोगुण की अधिकता से आलस्य की, क्रोध की, ईर्ष्या, द्वेष की प्रबलता रहती है। रजोगुण की अधिकता में इच्छा, कामना, तृष्णा प्रबल रहती है।

2. तुम में इच्छा की प्रबलता है, यह रजोगुण की ही प्रबलता है। रजोगुणी शक्ति कामना की पूर्ति में व्यय होती है यदि बाधा पड़ती है तब क्रोध प्रबल होता है उसमें शक्ति नष्ट होती है।

3. यदि यह रजोगुणी शक्ति सेवा में लग जाये तब पुण्य बढ़ जायें और सतोगुण प्रबल हो जाय।

4. यदि तुम अपने मन की पूर्ति करोगी तो पुण्य घटते जायेंगे। संचित पुण्यों से ही तुम्हारे मन की पूर्ति होती है। जब इच्छा पूर्ति में

बाधा पड़े तब समझना कि पुण्य रूपी पूंजी सहायक नहीं है। तुम्हारे पास जब तक धन है, तब तक बाजार से इच्छानुसार सामान खरीद सकती हो, लेकिन कुछ ऐसा सामान भी हो सकता है जिसकी कीमत तुम नहीं दे सकती हो।

5. जो संकल्प या कामना पूर्ति में बाधा या अड़चनें आयें उसे छोड़ देना विवेकी की सामर्थ्य है। पुण्य का संचय करने से वह कामना भी पूरी होगी जो पुण्य की कमी से पूर्ण नहीं होती थी।

6. तुम्हें जो अनुकूलता मिली है वह लाखों लोगों को नहीं मिली है। जो शक्ति व सम्पत्ति सुलभ है वह किसी जन्म में की गई सेवा का, दान का, तप का फल है। जो सुलभ नहीं है उसके लिए तुम न अपने को कोसो न ही उसके लिए तरसो या कलपो, बल्कि प्राप्त शक्ति सम्पत्ति का भोग न करके दूसरों का दुख हटाओ ऐसा करने से पुण्य बढ़ेंगे, उन्हीं पुण्यों से अनायास ही वह मिलेगा जो अभी प्रयत्न करने पर नहीं मिल रहा है।

7. तुम अज्ञानवश दुखी होती हो, जब दूसरों से कुछ मान, प्यार, अधिकार पाने की इच्छा करती हो। यदि तुम किसी से कुछ आशा न करो, कुछ न चाहो, अपने मन की अनुकूलता न चाहो तब तुम्हें अशान्ति अथवा दुख हो ही नहीं सकता।

8. तुम्हारे घर में एक कुत्ता भोजन मात्र पाकर पैर फैलाकर सुख से सो सकता है क्योंकि तुम्हारी तरह कामना नहीं करता। तुम भोजन, वस्त्र, धन, भवन के होने पर भी दुखी अशान्त होती हो, क्योंकि कुछ चाहती हो।

9. मन की दरिद्रता को, अहंकार की दरिद्रता को देखो, जो दुखी अशान्त हो जाता है। क्योंकि कभी मान चाहता है, या छोटी छोटी इच्छाओं की पूर्ति में सुख चाहता है। उसमें किसी के द्वारा बाधा पड़ती है या कोई कुछ कह देता है, तब एक व्यक्ति की बात मन में लेकर तुम दुखी अशान्त हो जाती हो।

10. तुम अपने मन के पाप से दुखी होती हो और नये पाप बढ़ा लेती हो।

11. लेकिन तुम सावधान होकर संचित पुण्यों को इच्छा पूर्ति के लिए अथवा दूसरों से मान, प्यार, अधिकार पाने के लिए नष्ट न करो।

12. संचित पापों से जो भी प्रतिकूलता आये उसे सहकर भोग डालो नये पाप न बढ़ने दो।

13. तुम प्राप्त पुण्य से अर्थात प्राप्त सम्पत्ति, शक्ति, योग्यता द्वारा अपनी पूर्ति करोगी तब पुण्य नष्ट होते जायेंगे। लेकिन प्राप्त सम्पत्ति, शक्ति, योग्यता द्वारा किसी का दुख हटाओगी तो पुण्य बढ़ जायेंगे। विचार करके तुम देख सकती हो, जिस समय तुम अपने अहंकार के दोष देखती हो तब कितनी सुन्दर विनम्रता, सरलता, मधुरता से चारों ओर शीतलता का प्रसार होता है। जब तुम्हारा अहंकार ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधावेश से भरा होता है तब तुम तो सन्तापित होती ही हो बल्कि चारों तरफ तपन भी बढ़ जाती है। ऐसा सन्ताप से झुलसा हुआ व्यक्तित्व किसी को भी नहीं भाता।

14. तुम प्राप्त शक्ति से यही संकल्प करो कि जब कभी पशुशक्ति अपने हृदय पर आक्रमण करेगी तब उस समय किसी को मुख न दिखाकर एकान्त में रहना है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध के आक्रमण में स्वयं को देखो उस समय दूसरे को न देखो। तुम्हारे साथ परमात्मा की शक्ति है उससे शुभ सुन्दर संकल्प करो, अशुभ संकल्प न करो। तुम दूसरों के दोष न देखो, उनके दोष उन्हें ही तपायेंगे, जैसे तुम्हारे दोष तुम्हें तपाते हैं। अपने दोष तुम दूर कर सकती हो, मैं तुम्हारे दोषों को दूर नहीं कर सकता और तभी कोई दोष दूर कर सकता है, जब तुम करने दो।

भगवान अर्जुन से कहते हैं तुम सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण आ जाओ, तब मैं तुम्हें सब बन्धनों से मुक्त कर दूँगा। अर्जुन

शरणागत होकर कहते हैं कि अब मोह दूर हो गया, स्मृति प्राप्त हो रही है, अब आप जो कह रहे हैं वही करुँगा। तुम यदि अभी से गुरू आज्ञानुसार ही सब कुछ करो, तब तो तुम्हारा कल्याण निश्चित है। गुरू आज्ञा वही है जहाँ कोई मांग नहीं है। गुरू आज्ञा से धन न देना होगा, दान अवश्य होगा। तन न देना होगा लेकिन सेवा में तन लगाना होगा। भूमि भवन न देना होगा लेकिन लोभ छोड़कर ममता रहित होना पड़ेगा। मन के द्वारा किसी गुरू की कामना पूर्ति नहीं करनी होगी, लेकिन अपनी कामना पूर्ति का पक्ष छोड़ना होगा। गुरू आज्ञा क्रोध, काम, अभिमान छोड़ देने की नहीं होगी, बल्कि क्रोध, लोभ, अभिमान आदि विकार उमड़ जाता है इसलिये इन विकारों को छोड़ देना तुम्हारे वश में नहीं है, लेकिन इन विकारों के प्रबल होने पर तद्नुसार कर्म न करने की आज्ञा है। क्रोध उमड़े तब उससे प्रेरित होकर किसी के साथ कर्म न करो। यही देखो कि यह क्रोधादि विकार अपने से क्या कराना चाहता है?क्रोध, लोभ, अभिमान से प्रेरित होकर दूसरे के साथ कुछ न करो, अपने शरीर के साथ भी कुछ न करो, केवल देखती रहो कि क्या, क्यों कराना चाहता है। देखते रहने से कुछ देर बाद या कुछ घण्टे बाद वही विलीन हो जायेगा।

अकेले नारी शरीर को घूमना निरापद नहीं है। एकाकी तो सम्बन्धी पुरूषों के बीच में भी नहीं रहना चाहिये, क्योंकि आसुरी आक्रमण की सम्भावना रहती है। मुझे अनेक घरों की घटनाएं विदित हैं। नारी के लिए पुरूषों का संग असत् संगी बना देता है। जिस नारी को कोई पुरूष दीखता ही न हो जो अपने को नारी मानती ही न हो, उसे कहीं खतरा नहीं है। जो नारी नाम रूप के अभिमान से ऊपर आत्मा होगी उसमें कहीं जाने के संकल्प ही न होंगे, कोई इच्छा कामना न होगी। उसमें अपने आनन्द से तृप्त आत्मा द्वारा स्वयं चारों ओर प्रेम की सुगन्ध प्रसारित होती रहेगी।

तुम मन की प्रतिकूलता को सहन करो, बाहर दुख सहने की जगह भीतर मन की प्रतिकूलता को सह लो यह तप तुम्हारे प्रतिकूल

कर्मों को नष्ट करेगा। सहना तो पड़ेगा ही। बाहर सहने से पाप होगा, कहने से पाप होगा, घर में सहने से तप होगा। किसी क्रोधी, ईर्ष्यालू, द्वेषी, अभिमानी की सहने की अपेक्षा तुम भीतर क्रोध को, ईर्ष्या, द्वेष को सह लो, यह शुभ होगा। घर में रहकर तुम्हारे ही द्वारा तुम्हें कष्ट होगा, कोई शत्रु का सामना न करना होगा। जप करो, अध्ययन करो, मौन रहो, प्रभु के समर्पण होकर देखो कि स्वतः क्या होता है। तुम कुछ न करो, अपने आप जो हो उसे प्रभु का विधान समझकर स्वीकार करो। वेग को रोक लो। किसी को देखने की आतुरता, सुनने की आतुरता, कहीं जाने की प्रबल उत्कण्ठा, कुछ पाने की उत्सुकता, यह सभी काम हैं। सभी कृतियों में वेग है, शक्ति का ह्रास है, पराधीनता है। अपनी प्रसन्नता अन्य पर निर्भर करना पराधीनता है। पराधीन कामी क्रोध के आवेग से नहीं बच पाता, प्रतिकूलता आने पर काम के साथ क्रोध प्रबल हो जाता है।

पथिक

*****

नाम रूप में प्रकाशित विराजमान महादेव परम आत्मा को सादर प्रणाम !

अहंकार अति दुखद डमरूआ।
दम्भ, कपट, मद, मान नेहरूआ।।

सौभाग्य से मुझे अनेकों अखिल भारतीय हरिनाम संकीर्तन, सम्मेलन, मानस प्रचार सम्मेलन, अखिल भारतीय सन्त सम्मेलन तथा अनेकों प्रकार के महायज्ञों में, सन्तों, महात्माओं, शास्त्रार्थ महारथियों के दर्शन का अवसर मिला। एक बार भारत की एक महानगरी में अखिल विश्व सनातन धर्म सम्मेलन आयोजित था। उसमें देश के राजा, महाराजा, काशी के प्रकाण्ड विद्वान, आचार्य तथा जगद्गुरू एवं अनेकों प्राचार्य जनों के विशाल सम्मेलन को ध्यान से देखा तो यही दिखाई दिया कि सम्मेलन की परिधि में असम्मेलन का आतंक छाया हुआ है।

यह भी देखा कि अहंकार किसी पण्डित से, किसी सन्त महात्मा से, जगद्गुरू से भी भयाता नहीं है। अहंकार नम्रता की चादर ओढ़कर सम्मान के आसन पर आसीन होकर सारी पूजा को स्वीकार कर रहा है। वेद शास्त्र का पाण्डित्य अहंकार की ही परिक्रमा कर रहा है। समस्त धर्मों का ज्ञान अहंकार को ही तृप्त कर रहा है। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, निन्दा, घृणा आदि शक्तियाँ अहंकार के समक्ष अपनी उपस्थिति का परिचय दे रही हैं। सत्य का साक्षात, शान्ति की अनुभूति, आनन्द का आस्वाद, प्रेम का माधुर्य इतना दूर हट गया है कि वहाँ की महासभा में उपस्थित आचार्य, प्राचार्य, सन्त, महात्मा, गुरू, जगद्गुरू भी इन दिव्य विभूतियों के दर्शन से वंचित रहकर अतृप्त अशान्त हो रहे हैं। फिर भी अहंकार के विशालकाय को, जो नाम रूप उपाधिमय बना था, उसे ज्ञान में सामने देख नहीं पा रहे थे। मैं भी तब देख सका जब तटस्थ होने पर गुरू ज्ञान में दृष्टि खुल सकी।

महर्षि वशिष्ठ का निर्णय है कि इस देह की रचना एक नियम से हुई है, उसका आश्रय अहंकार रूपी यक्ष ने ले रखा है। दुख कोई और को होता है, अन्त में भोक्ता कोई अन्य ही बनता है। इस प्रकार यह अज्ञान की प्रक्रिया चल रही है।

'अज्ञान मात्र संसिद्ध वस्तु ज्ञानेन नश्यति'

जो वस्तु अज्ञान से उत्पन्न होती है उसका विनाश ज्ञान से ही हो जाता है। दृष्टा और दृश्य के बीच अहंकार है कौन किससे उत्पन्न हुआ है?कैसा है?यह कहना कठिन है, अर्थात् अहंकार अनिर्वचनीय है। भगवान ने आठ प्रकार की प्रकृति को अपरा कहा है और जीवरूप चेतन प्रकृति को परा नाम दिया है। परा प्रकृति द्वारा ही सम्पूर्ण जगत धारण किया गया है। भगवान का निर्णय है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार से विभक्त होने वाली मेरी प्रकृति है।

परा और अपरा प्रकृति दोनों को लेकर परमेश्वर की नौ प्रकार

की देह है। अव्यक्त परमात्मा नौ प्रकार के तत्वों द्वारा व्यक्त हो रहा है। यह समग्र विश्व परमेश्वर की ही विराट देह है। इस विराट रूप को जो देखता है वही दिव्य चक्षु से सम्पन्न है। बाह्य नेत्रों से पशु पक्षी भी दृश्याकार को देखते हैं। जो मनुष्य आँखों से दीखने वाले रूप में सम्मोहित होकर अटक जाता है उसे ही मूढ़ कहते हैं। साधक, सिद्ध, सुजान जिस दिव्य दृष्टि, ज्ञान दृष्टि, प्रज्ञा दृष्टि से दर्शन करते हैं वह दर्शन मूढ़ मनुष्य नहीं कर पाते। यह भी गुरू निर्णय है– जिस प्रकार कोई कुली लोभवश, शक्ति से अधिक भार को सर में लेकर चलता है, उसी प्रकार मूढ़ अविवेक के भार को ढोता है। मूढ़ रागी ज्ञान के भार को ढोता है। अशान्त व्यक्ति के लिए मन ही भार बन जाता है। देहाभिमानी अज्ञानी भार को कुली के समान ढोते हुए मृत्यु को जाता है।

पथिक

*****

प्रेम स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, सुख स्वरूप आत्मदेव को नमस्कार !

यह सन्त वचन सदैव स्मरणीय हैं :–

1. सभी प्राणी सदा सुखी रहना चाहते हैं परन्तु सदा न रहने वाले संयोग में सुख मानते हैं।
2. सन्त ने समझाया कि यदि तुम सदा सुखी रहना चाहते हो तो उसे जानो जो सदा रहने वाला अविनाशी है। देह विनाशी है, चेतन अविनाशी है। विनाशी में अविनाशी को जान कर उसी में प्रीति स्थिर करो।
3. तुम सदा सुख स्वरूप ही हो, भ्रमवश अन्य वस्तु व्यक्ति में सुख मानते हो। परमात्मा अभी यहीं है। तुम परमात्मा में हो। परमात्मा सत्चेतन है। तुम सच्चिदानन्द से भिन्न नहीं हो।
4. चाह रहित, प्रयत्नरहित, अकिंचन होकर चेतना में बुद्धि को स्थिर

करो। दृष्टा चैतन्य ही सत्य है और सब कल्पना है।

5. परमात्मा तो बिना कुछ किए ही प्राप्त है।

6. चित के चेतन रहित होते ही चेतन आत्मा का बोध होता है।

7. आँख बन्द करके भीतर शून्यता को देखो, विचार शान्त रहें, कोई याद न आये तभी अविनाशी सत्चेतन की अनुभूति होती है।

8. मैं देह हूँ मेरी देह है। ऐसे देहाभिमानी की शुद्धि के लिए शास्त्र में कोई उपाय नहीं। तुम देह को अपना रूप न मानो।

9. अहंकार को प्रभु में समर्पित जानकर प्रभु की मर्जी से सब कुछ होते हुए देखो। सब स्वीकार करते जाओ, शान्त रहो, समस्थिर रहो।

10. अहंकार और विकारों के कारण चेतन आत्मा आवरण में है। अपना कुछ भी न मानो तभी अहं के आकार मिटेंगे।

11. प्रभु को सर्वमय जानकर सबमें प्रभु को प्रणाम करो। सत् परमात्मा तो क्षण में ही मिलेगा परन्तु असत् की सीढ़ी पार करने में बहुत समय लगेगा।

12. इसी क्षण परम चेतन का अनुभव करो। बार बार करते ही रहो। श्रद्धा वही सुन्दर है जहाँ अहंकार समर्पित है। जब तक मोह है तब तक लोभ नहीं छूटेगा। सद्गुरू के उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ेगा। अपना कुछ न मानने से मोह लोभ नहीं रहेगा। अपना मानते रहना दाता प्रभु के साथ अन्याय है।

13. जब तक भगवान को अपने से दूर मानते हो। जब तक धन, मान, संयोग, भोग चाहते हो तब तक भक्त नहीं हो सकोगे। जो अहंता ममता के त्यागी हैं, जो चाहों से रहित हैं, वही भगवद् भक्त हो सकते हैं।

14. अहं ज्ञान के साथ मेरा कुछ न रहने दो। जो कुछ तुम्हें सुन्दर प्रिय लगे उसके साथ चेतन तत्व का स्मरण करो।

15. अहंकार पाप है, अहंकार रहित होना पुण्य है। परमात्मा ही सर्वमय

है, इसी से सब कुछ प्रकाशित हो रहा है। सत् चेतन आनन्द स्वरूप से चिपटे रहिये भूलिये नहीं।

16. बीता हुआ भूत न चढ़ने दो और आगे की चिन्ता करने वाले को हटाते रहो।

17. ध्यान करो नहीं, ध्यान से देखो। मन, बुद्धि के पीछे चेतन की उपासना करो। चेतन स्वरूप से सन्तुष्ट तृप्त होना योगस्थ होना है, असंग होना है।

18. चेतन का स्मरण योग है। केवल चेतना में ठहरो तभी आसक्ति समाप्त होगी। वर्तमान के प्रति अन्धे न बनो, भविष्य का चिन्तन छोड़ो। जो अभी है उसे देखो। तार में विद्युत की तरह चेतन परमात्मा व्याप्त है परन्तु बुद्धि रूपी बल्ब में ही प्रकाशित होता है, तार में नहीं होता। शुद्ध बुद्धि में जब ज्ञान प्रकाशित होता है तब अहंकार का पता लगता है, स्वरूप का बोध होता है।

19. तुम्हें गुरू वाक्य श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, तो इस देह को देवालय समझकर इसमें चैतन्य देव, महादेव शिव की उपासना करो। ब्रह्म ऋषि वशिष्ठ जी ने समझाया है कि किसी भी साधना, आराधना, उपासना से जब वासना का क्षय तथा परमात्मा का बोध होता है, तभी परम पद प्राप्त होता है। शान्त होकर, संकल्प रहित होकर सोचो प्रत्युत जानो कि मैं नित्य निरन्तर चेतन स्वरूप हूँ, परमात्मा में ही हूँ।

20. सत् चेतन के सानिध्य का निरन्तर स्मरण ही सत्योपासना है।

21. अपने साथ रहने वाले आत्मदेव से ही निवृत्ति के लिए प्रार्थना करो।

22. यह देह माटी के दिये की भाँति है इसी में न अटके रहो। इसमें अविनाशी चेतन ज्योति को जान लो, वही तुम हो। इसी ज्योति को सभी देहों में पहचानते रहो। सत् आत्मा परमात्मा को पाने का कोई

मार्ग नहीं है, क्योंकि वह तो वहीं है जहाँ तुम हो। तुम अपने को खोजो, तुम अपने में ही पूछो कि मैं कौन हूँ, पूछते रहो। मौन होकर उत्तर की प्रतीक्षा करो, भले महीनों लग जायें, धैर्य से उत्तर की प्रतीक्षा करो।

पथिक

*****

देह में व्याप्त मन को स्मरण, मन में व्याप्त आत्मा को स्मरण, आत्मा के साथ परमात्मा को स्मरण करते हुए सर्वमय परमात्मा को सब ओर से प्रणाम।

सर्वोपरि पवित्र हृदय वही है जो शैतान में भगवान को ही देखता है और सर्वोपरि अपवित्र हृदय वह है जिसे भगवान में ही दुखदाता शत्रु शैतान प्रतीत होता है। भले ही कमल कीच से अदृश्य रूप से प्रगट होता है और कभी जब खिलता है तब पूर्ण निर्लिप्त ही होता है। जप से या मौन से कभी–कभी कुछ क्षणों के लिए विचार रहित, दृश्य रहित होने की घड़ी आती है तो बहुत शुभ है। कोई कोई साधक नित्य मौन रहने के नियम से कुछ महीने बीतने पर बहुत अच्छी स्थिति का अनुभव कर रहे हैं। ध्यान से देखने के लिये मौन शान्त होने के लिए कुछ समय प्रातः या सायंकाल निर्धारित होना ही चाहिए। जितना भी पढ़ने, बोलने से समय बचे, वह जप सुमिरन में लगाना चाहिए। बार–बार सचेत होने पर ही जप सुमिरन का अभ्यास बढ़ेगा। स्वास के आने जाने को देखते रहना और गुदाद्वार को आकुंचित किए रहने से विचार शून्यता सरल हो जाती है।

1. विचार विलय होने पर निज स्वरूप में रहना ही आनन्दानुभूति है।
2. मन को अन्तर्मुख करने के लिये सीधा वहाँ देखो जहाँ से अहं स्फुरित हो रहा है।
3. सभी विचारों में अहं व्याप्त है। अहं के श्रोत को ध्यान से जानो।

ध्यान का प्रयास न करो, दृष्टा तो प्रत्यक्ष ही है, विचारों से विकारों से मुक्त हो जाओ। स्वरूप ही प्रेम का अधिष्ठान है, प्रेम में होना आनन्द है। विचार उत्पन्न होते ही चेतन स्वरूप आत्मा का स्मरण करो। यही आत्माभ्यास है।

तुम्हारी मनःस्थिति जैसी है ऐसी होनी ही चाहिये। सभी के साथ शरीर में जो सूक्ष्म देह है उसमें 6 केन्द्र हैं जिसमें शक्ति की गति भिन्न–भिन्न रूप में उसी प्रकार प्रकट होती रहती है जिस प्रकार बांसुरी में एक ही वायु सात स्वरों में प्रकट होती है। शक्ति का प्रवाह जिस इन्द्रिय से अधिक होता है वही विषय प्रबल बन जाता है। रूपाशक्ति, श्रवणाशक्ति, गन्धाशक्ति, स्पर्शाशक्ति, स्वादाशक्ति, शक्ति की गतियाँ हैं। नाभिचक्र से शक्ति वासना, कामना, भोगेच्छाओं के पीछे व्यय होनी चाहिये। यदि उसके लिये कोई खुला मार्ग नहीं है इसलिये वह शक्ति कोई छिद्र खोज रही है। तब जिस प्रकार बांध में कोई थोड़ी भी दरार या छेद मिल जाये तो बड़ी तीव्रता से विस्फोट होता है, जो मुश्किल से काबू में आता है वही दशा मन की है। नाभि केन्द्र के ऊपर हृदय केन्द्र में भावना का प्राबल्य होता है उसकी प्रबलता में शक्ति का प्रवाह क्रिया कर्म में न होकर भाव में होता है। यदि भाव प्रबल होता तब कहीं जाने की प्रबल इच्छा न होती। शक्ति संचयावस्था में काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मोह, लोभादि दोषों में जो भी उमड़ता है, वही बहुत तीव्रता से होता है। यदि उस संकल्प में बाधा पड़ी, तब ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध प्रबल होता है। शक्ति के लिये कोई मार्ग चाहिये। काम से यदि शक्ति बच गई तब मीरा की भांति भाव प्राबल्य में भक्ति की साधना पूर्ण होती है या फिर व्यक्ति के मोह में परिवार की सेवा, जाति सेवा, देश सेवा में लग जाती है। यदि कोई दिशा नहीं मिलती तब छोटे संकल्पों को तीव्र बनाकर उसी में व्यय होती है। भगवान से सम्बन्ध जुड़ जाता तब ऐसी दशा न होती। किसी के प्रति आत्मीयता होने पर सेवा का अवसर मिल जाता, तब भी मन का वेग प्रबल न होता। जिस प्रकार बाहर कहीं जाने

के लिये शक्ति, समय, सम्पत्ति सब कुछ लगाने का साहस है इस साहस के पीछे आराम, विश्राम तथा सुख की प्राप्ति नहीं होगी बल्कि ह्रास होगा, थकावट होगी, आत्म ग्लानि बढ़ेगी, प्राप्त कुछ न होगा, फिर भी साहस है।

यदि यही साहस अन्तर साधना का होता तब शक्ति का प्रवाह अधोमुखी होने की जगह ऊर्ध्वमुखी हो जाता। लेकिन इस अन्तर यात्रा की साधना में मन की मांग ही बाधक बनती है। बुद्धि की सहायता से अन्तर यात्रा की साधना चल सकती है। यदि शक्ति द्वारा दृढ़ संकल्प हो जाय, कि चाहे शरीर छूट जाए पर एक ही जगह में रहना है। घूमते घूमते मरने खपने की अपेक्षा बैठे बैठे मन को सुखा लेना बड़ा सौभाग्य है। मन की पूर्ति से मन हरा भरा गीला रहता है। मन की पूर्ति न करने से कुछ दिनों में वह सूख जाता है। शक्ति को प्रवाहित होने देना अधोगामी होना है। शक्ति के प्रवाह में बांध बांधना उसे ऊर्ध्वामुखी बना लेना है। एकान्त में जप, ध्यान, अध्ययन में समय लगाया जाता, मौन रहा जाता, मन्त्र जप प्रातः व सायं दो घण्टा किया जाता तब तो शान्ति उपलब्ध हो जाती।

पथिक

*****

नाम रूप में चेतन स्वरूप आत्मा को स्मरण !

मन गतिशील है। जो पहले नहीं था वह अब है। जो अब मन है वह आगे न रहेगा। सदा कुछ भी नहीं रहता, परमात्मा की नित्य चेतन स्वरूप आत्मा सदा ही रहती है। मन ही अनेक संगमय हो जाता है मन ही लोभमय मोहमय बनता बिगड़ता रहता है। यदि साहस हो तो मन की पूर्ति में तृप्ति की कल्पना छोड़कर अपने सम्बन्धित जनों की पूर्ति चाहो तो बहुत शीघ्र ही मोह लोभ की सीमा को पार कर लोगी। अपनी पूर्ति पुण्य से होती है, पूर्ति के सुखोपभोग में पुण्य घटते हैं, दूसरों की पूर्ति से पुण्य बढ़ते हैं। मन के प्रत्येक संकल्प पर इच्छाओं

पर बुद्धि से परिणाम का निर्णय करो या फिर अपने से अधिक अनुभवी जनों की सम्मति से निर्णय करो।

जो अपने आप आये अथवा जाये, उसे प्रभु का विधान जानकर स्वीकार करो। अपनी ओर से कुछ पाने का संकल्प न करो, न छोड़ने का संकल्प करो। जो है उससे सेवा करो और जो कुछ छूटे उसकी चाह का त्याग करो। प्राप्त का सेवा द्वारा सदुपयोग और अप्राप्त की चाह का त्याग करने में स्वतन्त्र हो। चाह की पूर्ति का सुख क्षणिक ही रहता है, परन्तु मन नहीं मानता, तब अपने आप ही पूर्ति होती है उसकी ही प्रतीक्षा करो। जब स्वतः पूर्ति हो तब ठीक है। प्रयत्न करके पूर्ति में बहुत समय, शक्ति खर्च होती है। अभी तक तुममें लोभ का त्याग तो हो रहा है परन्तु मोह सिमट कर केन्द्रित हो रहा है, वह बहुत प्रबल है, तब जिससे मोह है उसकी सेवा का व्रत लिए रहो। जिसकी याद आये उससे लेने की कामना न रखकर देने का संकल्प करो। जो लेना है उसे छोड़ सकती हो लेकिन जो देना है उसे दे सकती हो। देने में स्वतंत्र हो लेने में नहीं हो। सर्विस में असावधानी न करो। सर्विस की बदौलत ही सेवा दान हो रहा है। सर्विस गई तब तो समय बिताना कठिन होगा। सौभाग्य के स्थान में दुर्भाग्य का भोग होगा। तुम्हारी शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता का उपयोग सेवा में हो सकता है, इनसे रहित शरीर तो भूमि का भार होगा। जिसे चाहती हो उसकी सेवा के अवसर खोजती रहो, चाहे वह व्यक्ति हो या समाज हो या देश हो, या भगवान हो, किसी से अपनी पूर्ति न चाहो। तुम अपने साथ सद्‌गुणों को लेकर सौभाग्यशालिनी हो। दोषों के साथ दुर्भाग्य है। सदैव गुणों का ही आश्रय लो, दोषों का नहीं। तुम प्रेम, दया, करूणा, उदारता, सरलता, नम्रता से ही हृदय को सुसज्जित रक्खो।

पथिक

*****

विनाशी देह में अविनाशी ज्ञान स्वरूप आत्मा को नाम

रूप में स्मरण!

आप मौन सत्संग अपने कमरे में ही बन्द करके किया करो। 6.50 से 7.15 तक मौन होकर चेतन स्वरूप परमात्मा में विश्राम करो, कुछ भी न करो, शरीर में सब कुछ उसी की शक्ति से हो रहा है उसे होते हुए अनुभव करो। दृष्टा होकर देखो कर्ता न बनो। साधना में एकाग्रता आने पर कभी कभी तन्द्रा आ जाती है, उसमें न सोना होता न जागना ही रहता है। क्षण क्षण बेखबरी हो जाती है, वह तन्द्रा अच्छी नहीं होती। तुम सजग होकर स्वास को निरन्तर देखती रहो, केवल सजग रहो, कोई प्रयत्न न करो, जो कुछ हो रहा है वह तुम्हारी स्मृति में रहना चाहिये। यदि हाथ मक्खी उड़ाने को उठे या कहीं खुजलाने को हाथ जाये उसे तुम देखती रहो। यह क्रिया यही साधना जारी रक्खो अन्य पूजा पाठ की आवश्यकता नहीं है। इससे शान्ति व शक्ति का अनुभव होगा। सदा निर्विकार चेतन आनन्द स्वरूप आत्मा की स्मृति में प्रसन्न रहो। चिन्ता, भय, शोक, दुख के भी दृष्टा बनो, अपने ऊपर न लादो। वह सब आने जाने वाले वेग हैं तुम आत्मस्वरूप में सदा स्थिर व शान्त हो। देहाभिमान देहाध्यासन से ऊपर उठो। प्रेमास्पद प्रभु से दूरी न मानो। स्वास गहरे लिया करो, पूरी भरो, पूरी निकालो। हल्की स्वास होने से खून कम बनता है, शरीर कमजोर हो जाता है, लम्बे स्वास का ध्यान रक्खो। शरीरों की दूरी होने पर भी चेतना की दूरी न समझो। कभी क्रोधादि विकार प्रबल हों तो उसको देखते रहने के लिए सावधान रहो, कर्म, क्रिया न होने दो। दोष के अनुसार क्रिया न हो तो फल नहीं बनता। तुम अपने प्रभु के प्रेम में तृप्त रहो, सन्तुष्ट, प्रसन्न रहो, प्रेम में दूरी नहीं होती। क्षमा का अभ्यास बढ़ाओ, अज्ञान में भूलें होती ही रहती हैं। लोभ, मोह, अभिमान, कामना के पीछे शक्ति नष्ट होती रहती है।

तुम पुस्तक पढ़ती हो, सो मुझे बहुत अच्छा लगा, समय व्यर्थ खोकर जप या अध्ययन या सेवा में ही लगे रहना उत्तम है। बहुत सीखना है, बहुत अज्ञान है, बहुत जानना बाकी है बहुत पर्दे है। जहाँ अन्धकार है सब खोल खोल कर देखना है। सेवा की पूर्णता, त्याग की,

प्रेम की पूर्णता ही तो साधना की सिद्धि है। अहंकार जब तक कुछ भी चाहेगा, तब तक प्रेम पूर्ण नहीं हो सकता। जब तक कुछ भी अपना समझकर बचायेगा तब तक सेवा पूर्ण नहीं हो सकती। अहंकार मिटाने पर प्रेम अनावृत्त होता है और अपना सर्वस्व समर्पण करने पर सेवा पूर्ण होती है। अपना कुछ न मानने पर ममता आसक्ति रहित होने पर त्याग पूर्ण होता है। कहीं जाओ तो सोचना चाहिये मन की पूर्ति के लिये गए या सेवा के लिये। यदि जाए बिना रहा नहीं जाता तब समझना चाहिये यह कामना पूर्ति है, मोह है। न सेवा है, न सत्संग है, या तो कुछ देने आये या फिर लेने आये, तो ठीक है। मन की इच्छा पूर्ति की जाय तब तो भोग में पुण्य क्षीण होते हैं। 40 रूपये आने जाने में खर्च किए, यह न अपना दर्शन है न गुरू दर्शन है। अहंकार की पूजा है। यदि पुस्तकों का अध्ययन नित्य नियम से किया जाय तो बुद्धि सूक्ष्म होती जाती है।

गुरू पशु, नर पशु, नारि पशु, वेद पशु संसार।

मानव सोइ सराहिये जहाँ विवेक विचार।।

अपने त्याग से, प्रेम से, सेवा से सन्तुष्ट रहो, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

पथिक

*****